परिशिष्ट

॥ टिप्पणियाँ ॥

(अन्वय, शब्दार्थ, हिन्दी में अर्थ)

मङ्गलाचरणम्

श्लोक– १ (क)

अन्वय– नः भद्राः क्रतवः विश्वतः आयन्तु।

शब्दार्थ– **नः** = हमारे लिए। **भद्राः** = कल्याणकारी (मंगलकारी)। **क्रतवः** = विचार (संकल्प)। **विश्वतः** = चारों ओर से (सभी ओर से)। **आयन्तु** = आयें।

अर्थ– हे ईश्वर! हमारे लिए (हमारे पास) मंगलकारी अर्थात् कल्याणकारी संकल्प सभी ओर से आयें।

श्लोक १. (ख)

अन्वय– वयम् देवाः यजत्राः कर्णेभिः भद्रं शृणुयाम् अक्षिभिः भद्रं पश्येम।

शब्दार्थ– **वयम्** = हम सब। **देवाः** = ईश्वर की। **यजत्राः** = उपासना करनेवाले। **कर्णेभिः** = कानों से। **भद्रं** = कल्याणकारी। **शृणुयाम** = सुने। **अक्षिभिः** = आँखों से। **पश्येम** = देखे।

अर्थ – हम सभी ईश्वर की उपासना करनेवाले कानों से कल्याणकारी (अच्छी) बातें ही सुनें तथा आँखों से कल्याणकारी ही देखें।

श्लोक २. अन्वय– नः नक्तम् उत उषसः मधु अस्तु। पार्थिवं रजः मधुमत्। पिता द्यौः मधु। वनस्पतिः मधुमान्, सूर्यः मधुमान् अस्तु। न गावः माध्वीः भवन्तु।

शब्दार्थ– **नः** = हमारे लिए। **नक्तम्** = रात्रि। **उत** = और। **उषसः** = दिन। **मधु** = मधुर (कल्याणकारी)। **अस्तु** = हो। **पार्थिवं** = पृथ्वी का। **रजः** = धूल। **द्यौः** = आकाश। **वनस्पतिः** = पेड़-पौधे। **गावः** = गायें। **माध्वी** = दुधारू।

अर्थ– भक्त ईश्वर से प्रार्थना करता है कि हमारे लिए रात और दिन कल्याणकारी हों। पृथ्वी माता की धूल और आकाश का प्रकाश हमारा कल्याण करें। पेड़-पौधे, सूर्य तथा दुधारू गायें हमारे लिए लाभदायिनी हों।

श्लोक ३. अन्वय– सं गच्छध्वं सं वदध्वं वः मनांसि सं जानताम्। एषां मन्त्रः समानः समितिः समानी मनः समानं चित्तं सह।

शब्दार्थ– **सं** = साथ-साथ। **गच्छध्वं** = जायें। **वदध्वं** = बोलें। **मनांसि** = मन में। **जानताम्** = उत्पन्न हो। **मन्त्रः** = सलाह। **समिति** = सभा। **समानी** = समान। **चित्तं** = मन। **सह** = साथ।

अर्थ– साथ-साथ मिलकर चलें, साथ-साथ बोलें, अपने मन को अच्छी तरह जानें, तुम सभी के निर्णय, संगठन, मन और चित्त समान हों।

श्लोक ४. अन्वय– यद् सु सारथिः इव अभीषुभिः वाजिनः अश्वान् इव मनुष्यान् नेनीयते। यद् हृद् प्रतिष्ठं, जिरं जविष्ठं तद् मे मनः शिव संकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ– **यद्** = जो। **सु** = अच्छा। **सारथिः** = रथ चलाने वाला। **इव** = तरह। **अभीषुभिः** = लगाम के द्वारा। **वाजिनः** = शक्ति सम्पन्न। **नेनीयते** = ले जाये जाते हैं। **अजिरं** = कभी वृद्ध न होने वाला। **जविष्ठं** = बहुत अधिक तेज चलनेवाले। **मे** = मेरे। **शिवसंकल्पम्** = कल्याणकारी। **प्रतिष्ठं** = प्रतिष्ठित। **हृद** = हृदय में।

अर्थ– हे ईश्वर! मेरे हृदय में अच्छे विचार प्रतिष्ठित हों। कल्याणकारी विचारों से पूरित, बुढ़ापे से रहित (कभी वृद्ध न होनेवाले) बहुत तेज गति से चलने वाला मेरा मन सभी कार्यों को उसी तरह नियन्त्रित करता रहे जिस प्रकार एक अच्छा (कुशल, प्रवीण) रथ चलानेवाला, लगामों के द्वारा शक्ति सम्पन्न घोड़ों को नियन्त्रित करके सही दिशा में ले जाता है।

श्लोक ५. अन्वय– यः भूतं च भव्यं च, यः च सर्वम् अधितिष्ठति। यस्य च स्वः केवलः तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।

शब्दार्थ– यः = जो। **भूतं** = जो हो चुका है। **भव्यं** = जो होगा। **च** = और। **सर्वम्** = सभी (पदार्थों में)। **अधितिष्ठति** = उपस्थित रहता है। **स्वः** = स्वर्ग। **ज्येष्ठाय** = सबसे बड़े। **ब्रह्मणे** = परब्रह्म परमात्मा को। **नमः** = नमस्कार।

अर्थ– जो (परब्रह्म, परमात्मा) भूतकाल में उत्पन्न हुए और भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सभी पदार्थों में उपस्थित रहता है और जिसकी कृपामात्र से ही मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है उस महान् परब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ।

1. रामस्य पितृभक्तिः

श्लोक १. अन्वय– सः रामः परिशुष्यता मुखेन दीनं पितरं कैकेय्या सहितं शुभे आसने निषण्णं ददर्श।

शब्दार्थ– सः = वह। **परिशुष्यता** = सूखते हुए। **मुखेन** = मुख से। **दीनं** = दुःखी (दयनीय)। **पितरं** = पिता को। **शुभे** = सुन्दर। **आसने** = आसन पर। **निषण्णं** = बैठे हुए। **ददर्श** = देखा।

अर्थ– वह राम सुमन्त के द्वारा बुलाये जाने पर दुःखी, मुख सूखे हुए पिताजी को (दशरथ को) कैकेयी के साथ सुन्दर आसन पर बैठे हुए देखा।

श्लोक २. अन्वय– सः विनीतवत् पूर्वं पितुः चरणौ अभिवाद्य ततः सुसमाहितः कैकेय्याः चरणौ ववन्दे।

शब्दार्थ– विनीतवत् = नम्रभाव से। **पूर्व** = पहले। **पितुः** = पिताजी को (दशरथ को)। **अभिवाद्य** = प्रणाम किया। **ततः** = तब (फिर)। **सुसमाहितः** = बहुत सावधानी से। **कैकेय्याः** = कैकेयी को। **चरणौ ववन्दे** = चरणाभिवादन किया (नमस्कार किया)।

अर्थ– वह राम पिताजी के पास जाकर पहले पिताजी (दशरथ को) प्रणाम किया तब बहुत सावधानी से कैकेयी के चरणों में नमस्कार किया।

श्लोक ३. अन्वय– दीनः नृपति तु 'राम' इति वचनं उक्त्वा वाष्पपर्या कुलेक्षणः न ईशितुं न अभिभाषितुं शशाक।

शब्दार्थ– दीनः = दुखी। **नृपतिः** = राजा (महाराज दशरथ)। **इति** = इस प्रकार (ऐसा)। **उक्त्वा** = कहकर। **वाष्पपर्याकुलेक्षणः** = आँसुओं से व्याकुल नेत्रवाले। **न** = नहीं। **ईशितुं** = देखना। **अभिभाषितुं** = कहना (बोलना)। **शशाक** = सके।

अर्थ– वह दुःखी राजा (दशरथ) एक बार 'राम' ऐसा कहकर चुप हो गये। आँसुओं से व्याकुल नेत्रवाले वह राजा दशरथ राम की ओर न तो देख सके और न कुछ बोल सके।

श्लोक ४. अन्वय– पितृहितेरतः चतुरः रामः चिन्तयामास किंस्वद नृपतिः अद्यैव मां न प्रत्यभिनन्दति।

शब्दार्थ– पितृ = पिता के। **हिते** = हित में (कल्याण में)। **चतुरः** = चतुर। **चिन्तयामास** = चिन्ता करने लगे (सोचने लगे)। **किं** = किस। **स्विद्** = कारण से। **मां** = मुझसे। **रतः** = लगे हुए। **प्रत्यभिनन्दति** = प्रसन्न होकर बातें करना। **अद्य** = आज।

अर्थ– पिता के हित में संलग्न वह चतुर राम चिन्ता करने लगे कि किस कारण से आज पिताजी प्रसन्न होकर बातें नहीं करते।

श्लोक ५. अन्वय– अन्यदा पिता कुपितोऽपि मां दृष्ट्वा प्रसीदति। अद्य मां सम्प्रेक्ष्य तस्य आयासः किं प्रवर्तते।

शब्दार्थ– अन्यदा = अन्य समय पर। **कुपितो** = नाराज होने पर। **अपि** = भी। **मां** = मुझे। **दृष्ट्वा** = देखकर। **प्रसीदति** = प्रसन्न हो जाते थे। **अद्य** = आज। **सम्प्रेक्ष्य** = देखकर। **आयासः** = दुःख। **किं** = क्यों। **प्रवर्तते** = हो रहा है।

अर्थ– अन्य समय पर पिताजी नाराज होने पर भी मुझे (राम) देखकर प्रसन्न हो जाते थे। आज मुझे देखते ही इन्हें (पिताजी को) इतना कष्ट (दु:ख) क्यों हो रहा है।

श्लोक ६. अन्वय– स: राम शोकार्त: दीन इव विषण्णवदनद्युति: कैकेयीम् अभिवाद्य एवं वचनं अब्रवीत्।

शब्दार्थ– शोकार्त: = शोक से व्याकुल। **विषण्ण** = मलिन। **वदन** = मुख। **द्युति:** = कान्ति (शोभा)। **अभिवाद्य** = प्रणाम करके। **कैकेयीम्** = कैकेयी को। **अब्रवीत्** = कहे (बोले)। **इव** = समान।

अर्थ– वह राम शोक से व्याकुल मलिन मुख कान्तिवाले दीन के समान, कैकेयी को प्रणाम करते हुए बोले।

श्लोक ७. अन्वय– कच्चित् मया अज्ञानात् अपराद्धं न येन पिता मे कुपित:, तत् मम आचक्ष्व एनं त्वम् एव प्रसादय।

शब्दार्थ– कच्चित् = कोई। **मया** = मेरे द्वारा। **अज्ञानात्** = अनजाने। **अपराद्धं** = अपराध। **येन** = जिससे। **कुपित:** = नाराज। **मम्** = मुझे। **तत्** = तो। **मे** = मेरे द्वारा। **आचक्ष्व** = बताओ। **एनं** = इन्हें। **त्वम्** = तुम (कैकेयी)। **एव** = ही। **प्रसादय** = प्रसन्न करो। **येन** = जिससे।

अर्थ– राम कैकेयी से कहते हैं कि मुझसे कोई अनजाने में अपराध तो नहीं हो गया जिससे पिताजी मुझसे नाराज हैं। अत: मुझे बताओ अथवा आप ही इन्हें प्रसन्न कीजिए।

श्लोक ८. अन्वय– कुपिते नृपे महाराजं अतोषयन् पितु: वच: अकुर्वन् वा मुहूर्त्तम् अपि जीवितुं न इच्छेयम्।

शब्दार्थ– कुपिते = नाराज हुए। **नृपे** = राजा के। **अतोषयन्** = असंतुष्ट करके। **मुहूर्त्तम** = दो घड़ी। **अपि** = भी। **जीवितुं** = जीवित रहना। **न** = नहीं। **इच्छेयम्** = इच्छा करता हूँ।

अर्थ– महाराज दशरथ नाराज हैं, उन्हें बिना प्रसन्न किये हुए, पिताजी के वचनों का पालन न करते हुए दो घड़ी भी जीवित रहने की इच्छा नहीं करता हूँ।

श्लोक ९. अन्वय– नर: इह आत्मन: प्रादुर्भावं यतोमूलं पश्येत् तस्मिन् प्रत्यक्षे दैवते सति कथं न वर्तेत।

शब्दार्थ– नर: = मनुष्य। **इह** = इस। **आत्मन्** = अपनी। **प्रादुर्भावम्** = जन्म को। **यतोमूलं** = जिस कारण से। **प्रत्यक्षे** = सामने। **दैवते** = देवतुल्य।

अर्थ– मनुष्य का इस संसार में जिसके मूल कारण से जन्म होता है, उस पितारूपी प्रत्यक्ष देवता के जीते जी उनके अनुकूल बर्ताव क्यों नहीं करना चाहिए।

श्लोक १०. अन्वय– महात्मना राघवेण एवं उक्ता तु सुनिर्लज्जा कैकेयी धृष्टम् आत्महितं इदं वच: उवाच।

शब्दार्थ– महात्मना = महान् पुरुष। **राघवेण** = राम के द्वारा। **एवं** = इस प्रकार। **उक्ता** = पूछने पर। **सुनिर्लज्जा** = अत्यन्त निर्लज्ज। **धृष्टम्** = ढीठता से। **आत्महितं** = अपने हितवाला। **इदं** = यह। **वच:** = वचन। **उवाच** = कहा।

अर्थ– महान् पुरुष राम के द्वारा पूछे जाने पर निर्लज्ज कैकेयी ने ढीठता के साथ अपने हित के वचन कहे।

श्लोक ११. अन्वय– प्रियं त्वाम् अप्रियं वक्तुम् अस्य वाणी न प्रवर्तते। अनेन यद् मम आश्रुतम्, तत् त्वया अवश्यं कार्यं।

शब्दार्थ– प्रियं = प्यारे हो। **त्वाम्** = तुमको। **अप्रियं** = कटु। **वक्तुम्** = कहने को। **अस्य** = इनकी। **वाणी** = बोली। **प्रवर्तते** = बोल नहीं पा रहे। **आश्रुतम्** = प्रतिज्ञा की है। **तत्** = वह। **त्वया** = तुम्हारे द्वारा। **कार्यं** = करना है।

अर्थ– कैकेयी राम से कहती है कि हे राम! तुम जैसे प्रिय पुत्र को कोई अप्रिय बात कहने के लिए इनकी वाणी कुछ बोलने में असमर्थ है। इन्होंने (महाराज दशरथ ने) मुझसे जो प्रतिज्ञा की थी, वह तुम्हारे द्वारा निश्चय ही पालन की जानी चाहिए।

श्लोक १२. अन्वय– एष: पुरा माम् अभिपूज्य मह्यं वरम् च दत्वा पश्चात् स राजा तथा तप्यते यथा अन्य प्राकृत:।

शब्दार्थ– एष: = इन्होंने। **पुरा** = पहले। **माम्** = मेरा। **अभिपूज्य** = सम्मान करते हुए। **मह्यं** = मुझे। **वरम्** = वर को। **च** = और। **दत्वा** = देकर। **पश्चात्** = बाद में। **तप्यते** = सन्तप्त होना (पश्चाताप करना)। **यथा** = जैसे। **अन्य** = कोई। **प्राकृत:** = साधारण पुरुष।

अर्थ– कैकेयी कहती है कि इन्होंने पहले मेरा सम्मान करते हुए मुझे वरों को दे दिया परन्तु बाद में राजा (महाराज दशरथ) एक साधारण पुरुष की भाँति दु:खी हो रहे हैं।

श्लोक १३. अन्वय– यदि राजा शुभं वा अशुभं वक्ष्यते, तद् यदि करिष्यसि तत: अहं तु पुन: सर्वम् आख्यास्यामि।

शब्दार्थ– **वा** = या। **वक्ष्यते** = कहना चाहते हैं। **तु** = इस प्रकार। **पुन:** = फिर। **सर्वम्** = सभी। **आख्यास्यामि** = कहूँगी (बताऊँगी)।

अर्थ– कैकेयी कहती है कि हे राम! यदि राजा जिस बात को कहना चाहते हैं, चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो; तुम उसका पालन करो तो मैं तुम्हें सब कुछ बता दूँगी।

श्लोक १४. अन्वय– कैकेय्या समुदाहृतम् एतत् वचनं श्रुत्वा तु राम: व्यथित: नृपसन्निधौ तां देवीं उवाच।

शब्दार्थ– **कैकेय्या** = कैकेयी के द्वारा। **समुदाहृतम** = कहा गया। **एतत्** = इस प्रकार के। **वचनं** = वचन को। **श्रुत्वा** = सुनकर। **तु** = इस प्रकार। **व्यथित:** = दु:खी। **नृपसन्निधौ** = राजा के पास। **तां** = उस। **उवाच** = कहा।

अर्थ– कैकेयी के द्वारा कहे गये वचनों को सुनकर राम बहुत ही दु:खी हुए और राजा के पास बैठी हुई देवी (कैकेयी) से बोले।

श्लोक १५. अन्वय– अहो धिङ् माम देवि! ईदृशं वच: वक्तुं न अर्हसे। राज्ञ: वचनात् हि अहं पावके अपि पतेयम्।

शब्दार्थ– **अहो** = अरे। **धिङ्** = धिक्कार है। **माम्** = मुझे। **देवि** = हे देवि। **ईदृशं** = इस प्रकार के। **वच:** = वचन। **वक्तुं** = कहना। **अर्हसे** = कर सकता है। **अहं** = मैं। **वचनात्** = वचन से (आज्ञा से)। **अपि** = भी। **पतेयम्** = गिर सकता हूँ।

अर्थ– हे देवि! मुझे धिक्कार है। मेरे प्रति आपको ऐसे वचन कहना उचित नहीं है। मैं पिताजी की आज्ञा से अग्नि में भी गिर सकता हूँ अर्थात् कूद सकता हूँ।

श्लोक १६. अन्वय– गुरुणा, पित्रा, नृपेण हितेन च नियुक्त: (अहं) तीक्ष्णं विषं भक्षयेयं, अर्णवे अपि च पतेयम्।

शब्दार्थ– **गुरुणा** = गुरु से। **पित्रा** = पिता से। **नृपेण** = राजा से। **च** = और। **हितेन** = हित। **नियुक्त:** = नियुक्त किया अर्थात् कार्य में लगाया गया। **तीक्ष्णं** = तेज। **विषं** = जहर। **भक्षयेयं** = भक्षण कर सकता हूँ (खा सकता हूँ)। **अर्णवे** = समुद्र में। **पतेयम्** = गिर सकता हूँ।

अर्थ– श्रीराम माता कैकेयी से कहते हैं कि मैं गुरु, राजा तथा पिता के द्वारा हित में लगाये हुए तेज जहर खा सकता हूँ तथा गहरे समुद्र में गिर सकता हूँ।

श्लोक १७. अन्वय– देवि, राज्ञ: यद् अभिकाङ्क्षितम् तद् वचनं ब्रूहि (अहं) तत् प्रतिजाने करिष्ये, राम द्वि: न अभिभाषते।

शब्दार्थ– **यद्** = जो। **अभिकाङ्क्षितम्** = चाहते हैं। **ब्रूहि** = बताओ। **प्रतिजाने** = प्रतिज्ञा करता है। **द्वि:** = दो। **न** = नहीं। **अभिभाषते** = (कहता) बोलता।

अर्थ– हे देवि, राजा ने जो भी अपने मन में सोचा है वह वचन मुझसे बताइए। मैं (गम) प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसे अवश्य ही पूरा करूँगा। मैं कभी दोहरी अर्थात् दो बातें नहीं करता हूँ।

श्लोक १८. अन्वय– अनार्या कैकेयी आर्जवसमायुक्तम् सत्यवादिनं तं रामं भृशदारुणं वचनं उवाच।

शब्दार्थ– **अनार्या** = नीच विचारों को धारण करने वाली। **आर्जवसमायुक्तम्** = सरलता या कोमलता से युक्त। **तं** = उस। **रामं** = राम को। **भृशदारुणं** = अत्यन्त कठोर। **उवाच** = कहा। **सत्यवादिनम्** = सत्यवादी से।

अर्थ– नीच विचारोंवाली कैकेयी ने राम की कोमल, सरल और कपट से परे बात सुनकर, उस सत्यवादी से कठोर वचन कहे।

श्लोक १९. अन्वय– हे राघव ! पुरा दैवासुरे, युद्धे महारणे ते पित्रा सशल्येन (मया) रक्षितेन मम् वरौ दत्तौ।

शब्दार्थ– **हे राघव** = हे राम! **पुरा** = पहले (प्राचीन समय में)। **दैवासुरे** = देव और असुरों में। **सशल्येन** = बाणों से विद्ध होने पर। **महारणे** = बड़े संग्राम में। **रक्षितेन** = रक्षा के लिए। **वरौ** = दो वर। **दत्तौ** = दिये थे।

अर्थ– हे राम ! प्राचीन काल में देवासुर संग्राम में तुम्हारे पिता शत्रुओं के बाणों से विंध गये थे। उस बड़े युद्ध में मैंने इनकी (दशरथ की) रक्षा की थी। उससे प्रसन्न होकर, इन्होंने (दशरथ ने) मुझे दो वरदान दिये थे।

श्लोक २०. अन्वय– राघव ! तत्र (एकेन) मे भरतस्य अभिषेचनं याचित: (अपरेण) अद्य एव तव दण्डकारण्ये गमनं याचित:।

शब्दार्थ– **राघवः** = हे राम! **तत्र** = वहाँ। **एकेन** = एक वर में या पहले वर में। **भारतस्य** = भरत का। **अभिषेचनं** = राजगद्दी। **याचितः** = माँगी। **अपरेण** = दूसरे में। **अद्य** = आज। **एव** = ही। **तव** = तुम्हारा। **दण्डकारण्ये** = दण्डक नामक जंगल में अर्थात् वनवास। **गमनं** = जाना। **याचितः** = माँगी या स्वीकार करा ली है।

अर्थ– हे राम! उन दोनों वरों में एक में भरत का राज्याभिषेक तथा दूसरे में आज ही तुम्हें दण्डक वन जाने की बात अर्थात् वनवास स्वीकार करा ली है।

श्लोक २१. अन्वय–नर श्रेष्ठ ! यदि त्वं पितरं आत्मानं च सत्य प्रतिज्ञं कर्तुम् इच्छसि इदं वाक्यं शृणु।

शब्दार्थ– **नर श्रेष्ठ !** = राम (मनुष्यों में श्रेष्ठ)। **त्वं** = तुम। **पितरं** = पिताजी (दशरथ को)। **आत्मानं** = अपने आपको। **च** = और। **सत्य प्रतिज्ञं** = सच्ची प्रतिज्ञावाले। **कर्तुमिच्छसि** = करना चाहते हो। **इदं** = यह। **शृणु** = सुनो।

अर्थ– हे नर श्रेष्ठ! यदि तुम अपने आपको तथा अपने पिता को सत्य प्रतिज्ञा वाला बनाना चाहते हो तो केवल मेरे वाक्य सुनो अर्थात् मेरी ही बात को सुनो।

श्लोक २२– अन्वय– त्वया नव पंच वर्षाणि अरण्यं प्रवेष्टव्यम्। भरत: कोशलपते: इमां वसुधां प्रशास्तु।

शब्दार्थ– **त्वया** = तुम्हें। **नवपंच** = चौदह। **वर्षाणि** = वर्ष तक। **अरण्यं** = जंगल में। **प्रवेष्टव्यं** = प्रवेश करना चाहिए। **कोशलपतेः** = कौशल देश के राजा की इस भूमि पर। **प्रशास्तु** = शासन करे।

अर्थ– कैकेयी राम से कहती है कि तुम्हें चौदह वर्ष तक जंगल में व्यतीत करना चाहिए और भरत कोशल नरेश (दशरथ) की इस वसुधा (पृथ्वी) अयोध्या पर शासन करे।

श्लोक २३. अन्वय– तद् अप्रियं मरणोपमम् वचनं श्रुत्वा अमित्रघ्न: राम: न विव्यथे, कैकेयीं च इदम् अब्रवीत्।

शब्दार्थ– **तद्** = उस। **अप्रियं** = अप्रिय। **मरणोपमम्** = मरणतुल्य। **वचनं** = वचन को। **श्रुत्वा** = सुनकर। **अमित्रघ्नः** = शत्रुओं का वध करनेवाले। **विव्यथे** = दु:खी। **कैकेयीं** = कैकेयी से। **अब्रवीत्** = बोले (कहा)।

अर्थ– उस अप्रिय तथा मृत्यु के समान वचनों को सुन करके शत्रुओं का वध करनेवाले राम व्यथित अर्थात् दु:खी नहीं हुए। उन्होंने कैकेयी से इस प्रकार कहा।

श्लोक २४. अन्वय–एवम् अस्तु, अहं तु राज्ञ: प्रतिज्ञाम् अनुपालयन् जटाचीरधर: इत: वनं वस्तुम् गमिष्यामि।

शब्दार्थ– **एवम्** = ऐसा। **अस्तु** = हो। **राज्ञः** = राजा की। **प्रतिज्ञाम्** = प्रतिज्ञा का। **अनुपालयन्** = पालन करते हुए। **जटाचीरधरः** = जटा और केसरिया वस्त्र। **इतः** = यहाँ से। **वस्तुम्** = निवास करने के लिए। **गमिष्यामि** = चला जाऊँगा।

अर्थ– ऐसा ही हो, मैं महाराज दशरथ की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए जटा और केसरिया वस्त्र धारण करके वन में रहने के लिए चला जाऊँगा।

श्लोक २५. अन्वय– अहं (त्वया) प्रचोदित: भ्रात्रे भरताय सीतां राज्यं इष्टान् प्राणान् च धनानि च हृष्ट: स्वयं दद्याम् ।

शब्दार्थ– **अहं** = मैं। **प्रचोदितः** = प्रेरित होकर। **भ्रात्रे** = भाई। **भरताय** = भरत के लिए। **सीतां** = सीता को। **राज्यं** = राज्य को। **इष्टान्** = प्रिय। **प्राणान्** = प्राणों को। **धनानि** = धन को। **हृष्टः** = प्रसन्नतापूर्वक। **दद्याम्** = दे सकता हूँ।

अर्थ– मैं (राम) स्वयं प्रसन्न होता हुआ आपके द्वारा प्रेरित अवश्य ही भाई भरत के लिए सीता को, राज्य को, प्रिय प्राणों को और धन को छोड़ सकता हूँ अर्थात् दे सकता हूँ।

श्लोक २६. अन्वय– पितरि शुश्रूषा तस्य वचनक्रिया वा यथा धर्मचरणम्, अतः महत्तरं किञ्चित् नहि अस्ति।

शब्दार्थ– **पितरि** = पिता की। **शुश्रूषा** = सेवा। **तस्य** = उनकी। **धर्मचरणम्** = धर्माचरण। **अतः** = इससे। **महत्तरं** = बड़ा। **किञ्चित्** = कोई।

अर्थ– पिता की सेवा या उनकी आज्ञा का पालन करना जैसा महत्त्वपूर्ण धर्म है, उससे बढ़कर संसार में कोई दूसरा धर्माचरण नहीं है।

2. सुभाषितानि

श्लोक १. अन्वय– अन्यायोपार्जितं वित्तं दश वर्षाणि तिष्ठति। एकादशे च वर्षे प्राप्ते तद् समूलं विनश्यति।

शब्दार्थ– **अन्यायोपार्जितं** = अन्याय से प्राप्त किया गया। **वित्तं** = धन। **दश वर्षाणि** = दस वर्ष तक ही। **तिष्ठति** = रहता है। **एकादशे** = ग्यारहवें। **वर्षे** = वर्ष में। **समूलं** = मूल सहित। **विनश्यति** = नष्ट हो जाता है।

अर्थ– अन्याय द्वारा प्राप्त किया धन केवल दस वर्ष तक ही स्थिर रह सकता है। ग्यारहवें वर्ष में वह धन मूल सहित नष्ट हो जाता है।

श्लोक २. अन्वय– अतिव्ययः अनपेक्षा तथा अधर्मतः अर्जनम् मोक्षणं दूर संस्थानं च कोष व्यसनम् उच्यते।

शब्दार्थ– **अतिव्ययः** = अधिक खर्च करना। **अनपेक्षा** = असावधानी। **अधर्मतः** = अन्याय से। **अर्जनम्** = कमाना। **मोक्षणं** = त्याग या दान देना। **संस्थानं** = कार्यस्थल। **कोष** = खजाने के। **व्यसनं** = दोष। **उच्यते** = कहे हैं।

अर्थ– अधिक खर्च करना, असावधानी, अन्याय से धन कमाना, अधिक दान देना, अपने से बहुत दूर रखना ये सब धन के नष्ट होने के कारण कहे गये हैं।

श्लोक ३. अन्वय– न अलसाः, न मायिनः, न शठाः न च लोकापवाद् भीता न च शश्वत् प्रतीक्षिणः अर्थान् प्राप्नुवन्ति।

शब्दार्थ– **न** = नहीं। **अलसाः** = आलसी। **शठाः** = धूर्त। **मायिनः** = कपटी। **लोकापवाद्** = लोक निन्दा से। **भीताः** = डरे हुए। **शश्वत्** = निरन्तर। **प्रतीक्षिणः** = प्रतीक्षा करनेवाले। **अर्थान्** = धन को। **प्राप्नुवन्ति** = प्राप्त कर पाते हैं।

अर्थ– आलसी, कपटी, धूर्त्त, लोक-निन्दा से डरे हुए तथा लगातार प्रतीक्षा करने वाले लोग कभी भी धन नहीं प्राप्त कर पाते हैं।

श्लोक ४. अन्वय– इह अन्यायप्रभवाद् विभवाद् दारिद्र्यं वरम्। देहे कृशता अभिमता न तु शोफतः पीनता।

शब्दार्थ– **इह** = इस। **अन्यायप्रभवाद्** = अन्याय से उत्पन्न। **विभवाद्** = धन से। **दारिद्र्यं** = गरीबी। **वरम्** = श्रेष्ठ। **देहे** = शरीर में। **कृशता** = क्षीणता। **अभिमता** = मनचाही। **शोफतः** = सूजन से। **पीनता** = मोटापा।

अर्थ– इस संसार में अन्याय से प्राप्त धन की अपेक्षा गरीबी ही श्रेष्ठ है। इसी प्रकार सूजन से उत्पन्न मोटेपन से तो शरीर की दुर्बलता ही अच्छी है।

श्लोक ५. अन्वय– मतिमान् अर्थनाशं मनस्तापं गृहे च दुश्चरितानि वञ्चनं च अपमानं च न प्रकाशयेत्।

शब्दार्थ– **मतिमान्** = बुद्धिमान्। **अर्थनाशं** = धन का नाश। **मनस्तापं** = मन के दुःख को। **गृहे** = घर में। **दुश्चरितानि** = दुराचरण। **वञ्चनं** = ठगा जाना। **अपमानं** = अपमान को। **प्रकाशयेत्** = प्रकाशित करे (प्रकट करे)।

अर्थ– बुद्धिमान् पुरुष को सम्पत्ति के नष्ट हो जाने को, मन के दुःख को, घर में होनेवाले दुराचरण को, ठगे जाने और अपने अपमान को कभी दूसरों को नहीं बताना चाहिए।

श्लोक ६. अन्वय– गृहिणः अतिथिः, बालकः, पत्नी, जननी तथा जनकः एते पञ्च पोष्या। इतरे च स्वशक्तितः।

शब्दार्थ– **गृहिणः** = गृहस्थ के। **अतिथि** = आगन्तुक। **जननी** = माँ। **जनकः** = पिता। **पञ्च** = पाँच। **पोष्या** = पालन-पोषण के योग्य। **इतरे** = अन्य। **च** = और। **स्व** = अपनी। **शक्तितः** = शक्ति के अनुसार।

अर्थ– एक गृहस्थ को अतिथि, बच्चा, पत्नी, माँ और पिता इन पाँचों का पालन-पोषण करना चाहिए। इनके अतिरिक्त दूसरों का पालन-पोषण अपनी शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए।

श्लोक ७. अन्वय– अत्यन्त सरलै न भाव्यं। वनस्थलीं गत्वा पश्य सर्वत्र सरला: (तरव:) छिद्यन्ते कुब्जा: तिष्ठन्ति।

शब्दार्थ– **अत्यन्त** = अधिक। **सरलै** = सीधे। **न** = नहीं। **भाव्यं** = होना चाहिए। **वनस्थलीं** = जंगल में। **गत्वा** = जाकर। **पश्य** = देखो। **सर्वत्र** = सभी। **तरवः** = वृक्ष। **छिद्यन्ते** = काटे जाते हैं। **कुब्जाः** = टेढ़े-मेढ़े। **तिष्ठन्ति** = रहते हैं।

अर्थ– मनुष्य को अधिक सीधा (सरल स्वभाव) नहीं होना चाहिए। जंगल में जाकर देखो सीधे खड़े वृक्ष काट डाले जाते हैं किन्तु टेढ़े-मेढ़े वृक्ष खड़े रहते हैं। अत: अत्यन्त सीधापन स्वयं के लिए ही हानिकारक है।

श्लोक ८. अन्वय– मौनं, कालबिलम्ब:, प्रयाणं, भूमिदर्शनं, भृकुटी, अन्यमुखी वार्ताचेति षड्विध: नकार: स्मृत:।

शब्दार्थ– **मौनं** = चुप रहना। **कालविलम्बः** = बहुत देर करना। **प्रयाणं** = चला जाना। **भूमिदर्शनं** = पृथ्वी की ओर देखना। **भृकुटी** = भौंहों के द्वारा। **अन्यमुखी** = दूसरों के मुख की ओर देखना। **वार्ताचेति** = बातें करना।

अर्थ– इस श्लोक में दूसरों से मना करने के लिए छह प्रकार बताये गये हैं– मौन रहना, देर करना, चल देना, पृथ्वी की ओर देखने लगना, भौंहें सिकोड़ना और किसी अन्य से बातें करना।

श्लोक ९. अन्वय– गुरव: प्रत्यक्षे स्तुत्या:, मित्र बांधवा: परोक्षे, दास भृत्या च कर्मान्ते, पुत्रा नैव च नैव च।

शब्दार्थ– **गुरवः** = गुरु की। **प्रत्यक्षे** = सामने। **स्तुत्याः** = प्रशंसा। **मित्र बान्धवाः** = मित्र और भाई बान्धवों की। **परोक्षे** = बाद में (पीछे)। **भृत्याः** = नौकरों की। **कर्मान्ते** = कार्य के बाद। **पुत्रा** = पुत्र की। **नैव** = कभी नहीं। **च** = और।

अर्थ– गुरुओं की सामने, मित्र और भाई-बन्धुओं की पीठ पीछे, कार्य समाप्त हो जाने पर नौकरों की प्रशंसा करनी चाहिए, परन्तु पुत्रों की प्रशंसा कभी भी नहीं करनी चाहिए।

श्लोक १०. अन्वय– क्षणे तुष्टा क्षणे रुष्टा, क्षणे क्षणे तुष्टा रुष्टा, अव्यवस्थित चित्तानां प्रसाद: अपि भयंकर: भवति।

शब्दार्थ– **क्षणे** = पल भर में। **तुष्टा** = प्रसन्न होनेवाले। **रुष्टा** = नाराज होनेवाले। **अव्यवस्थित चित्तानां** = चंचल मन वालों की। **प्रसादः** = प्रसन्नता। **अपि** = भी। **भयंकरः** = भयानक। **भवति** = होती है।

अर्थ– जिन लोगों का चित्त स्थिर नहीं रहता वे पल भर में प्रसन्न हो जाते हैं, पल भर में नाराज हो जाते हैं। ऐसे लोगों की प्रसन्नता भी भयानक होती है।

श्लोक ११. अन्वय– इह भूतिम् इच्छता पुरुषेण निद्रा, तन्द्रा, भयं, क्रोध:, आलस्यं दीर्घसूत्रता (इति) षड्दोषा: हातव्या।

शब्दार्थ– **इह** = इस। **भूतिम्** = कल्याण के। **इच्छता** = चाहनेवाले। **पुरुषेण** = पुरुष को। **निद्रा** = निद्रा। **तन्द्रा** = ऊँघना। **भयं** = डर। **क्रोधः** = क्रोध करना। **आलस्यं** = आलस को। **दीर्घसूत्रता** = देरी से कार्य करनेवालों का स्वभाव। **हातव्या** = त्याग देना चाहिए या छोड़ देना चाहिए।

अर्थ– इस संसार में अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुष को छह दोषों को त्याग देना चाहिए– नींद, ऊँघना, डरना, क्रोध करना, आलस्य करना और देरी से कार्य करना।

श्लोक १२. अन्वय– विनय अवाप्ति: विद्यया, सा विद्या अविनयावहा चेत् स्वमातरि गरदायां कुर्म: कं प्रति ब्रूम:।

शब्दार्थ– **विनय** = विनय। **विद्यया** = विद्या के द्वारा या विद्या से। **अवाप्तिः** = प्राप्त होती है। **सा** = वह। **आवहा** = लानेवाली। **गरदायां** = जहर देनेवाली। **स्वमातरि** = अपनी माँ के विषय में। **प्रति ब्रूमः** = उत्तर दें।

अर्थ– विद्या के द्वारा ही विनम्रता प्राप्त होती है। यदि वही विद्या धूर्तता करनेवाली हो जाय तो अपनी विष देनेवाली माँ के समान किससे कहें?

श्लोक १३. अन्वय– यत्र सर्वे विनेतार:, सर्वे पण्डित मानिन:, सर्वे महत्त्वं इच्छन्ति, तद् वृन्दम् अवसीदति।

शब्दार्थ– **यत्र** = जहाँ। **सर्वे** = सभी। **विनेतारः** = नेता। **पण्डित** = विद्वान्। **मानिनः** = मानते हो। **महत्त्वं** = प्रशंसा। **इच्छन्ति** = चाहते हैं। **तद्** = वह। **वृन्दम्** = समूह। **अवसीदति** = नष्ट हो जाता है।

अर्थ– जहाँ सभी अपने को नेता मानते हों, सभी अपने को विद्वान् मानते हों, सभी अपना महत्त्व समझते हों, वह समूह नष्ट हो जाता है।

श्लोक १४. अन्वय– सम्पूर्ण कुम्भः शब्दं न करोति, अर्द्धः घटः नूनम् घोषं उपैति, कुलीनो विद्वान गर्वं न करोति, गुणैर्विहीनाः मूढास्तु जल्पन्ति।

शब्दार्थ– **सम्पूर्ण** = पूरा भरा हुआ। **कुम्भः** = घड़ा। **शब्दं** = शब्द को। **न** = नहीं। **करोति** = करता है। **अर्द्धः** = आधा। **नूनम्** = अवश्य ही। **घोषम्** = आवाज। **उपैति** = करता है। **कुलीनः** = अच्छे कुल या परिवार में उत्पन्न। **गर्वः** = घमण्ड। **मूढ़ाः** = मूर्ख लोग। **जल्पन्ति** = ऊँची-नीची बातें करते हैं।

अर्थ– जिस प्रकार पूरा भरा हुआ घड़ा किसी प्रकार की आवाज नहीं करता, परन्तु आधा भरा हुआ घड़ा आवाज करता है; उसी प्रकार, अच्छे कुल में पैदा हुआ विद्वान् कभी घमण्ड नहीं करता है, केवल गुणों से हीन मूर्ख ही व्यर्थ में ऊँची-नीची बातें करते हैं।

श्लोक १५. अन्वय– दरिद्रता धीरतया विराजते, कुरूपता शीलतया विराजते, कुभोजनम् ऊष्णतया विराजते, कुवस्त्रता च शुभ्रतया विराजते।

शब्दार्थ– **धीरतया** = धैर्य से। **विराजते** = शोभा पाती है। **कुरूपता** = भद्दापन। **शीलतया** = विनम्रता से। **कुभोजनम्** = बुरा या बासी भोजन। **ऊष्णतया** = गर्म होने से। **कुवस्त्रता**=मलिन या गन्दे कपड़े। **शुभ्रतया** = साफ होने से।

अर्थ– दरिद्रता धैर्य से शोभा पाती है, कुरूपता शिष्ट व्यवहार से शोभा पाती है, बासी भोजन गर्म होने से शोभा पाता है, बुरे या गन्दे वस्त्र स्वच्छ होने पर शोभा पाते हैं।

3. अन्योक्ति-मौक्तिकानि

श्लोक १. अन्वय– पयोद! विमुक्ताः आपः क्वचित् आपः एव, क्वचित् न किञ्चित्, क्वचित् च गरलं, यस्मिन् विमुक्ताः मुक्ताः प्रभवन्ति, तस्मिन् त्वं कुतः विमुखः।

शब्दार्थ– **पयोदः** = हे बादल। **विमुक्ताः** = छोड़े गये। **आपः** = जल। **क्वचित्** = कहीं। **किंचित्** = कुछ भी। **गरलं** = विष। **मुक्ताः** = मोती। **प्रभवन्ति** = पैदा होते हैं। **कुतः** = क्यों।

अर्थ– अन्योक्तिकार कहता है कि हे बादल! आपके द्वारा छोड़ा गया जल कहीं तो जल ही रहता है, कहीं पर कुछ भी नहीं रहता तथा कहीं वह जल जहर बन जाता है और कहीं मोती बन जाता है, उससे विमुख क्यों हो।

श्लोक २. अन्वय– जलनिधौ तव जननं, वपुः धवलं स्थितिः अपि मुरिपोः पाणितले इति समस्त गुणान्वित भो शंख! (तव) हृदयात् कुटिलता न निवारिता।

शब्दार्थ– **जलनिधौ** = समुद्र में। **तव** = तुम्हारा। **जननं** = जन्म। **वपुः** = शरीर। **धवलं** = श्वेत (स्वच्छ)। **मुररिपो** = विष्णु के। **पाणितले** = हाथ में। **हृदयात्** = हृदय से। **कुटिलता** = नीचता (टेढ़ापन)। **निवारिता** = छोड़ी (दूर की)।

अर्थ– हे शंख! तुम्हारा जन्म समुद्र में हुआ है, तुम्हारा शरीर श्वेत रंग का है, निवास विष्णु के हाथ में है। इस प्रकार समस्त गुणों से सम्पन्न होते हुए भी हृदय से टेढ़ेपन को दूर नहीं किया।

श्लोक ३ अन्वय– अयं नलिनीदल मध्यगः कमलिनीमकरन्दमदालसः। अयम् अलिः विधिवशात् परदेशम् उपागतः (सन्) कुटजपुष्परसं बहु मन्यते।

शब्दार्थ– **अयं** = यह। **नलिनी** = कमलिनी। **मध्यगः** = बीच में। **मदालसः** = मद से अलसाया। **अलिः** = भौंरा। **विधिवशात्** = दैवयोग से। **उपागतः** = आ जाने से। **कुटज** = एक पर्वतीय पौधा।

अर्थ– यह भौंरा जो कमलिनी दल के बीच में निवास करता है उसी से मकरन्द की सुगन्ध से अर्थात् मद से अलसाया-सा रहता है। यदि यह भौंरा दैवयोग से परदेश में चला जाता है तो वहाँ उसे कुटज को ही बहुत कुछ समझ लेना पड़ता है।

श्लोक ४. अन्वय– प्रिय सखि! उरसि फणिपतिः, ललाटे शिखी, शिरसि विधुः जटायां सुरवाहिनी। किं रहस्यं कथयामि इति पुरमथनस्य रहः अपि संसद् एव।

शब्दार्थ– **उरसि** = वक्षस्थल पर। **फणिपतिः** = सर्प। **ललाटे** = मस्तक पर। **शिखी** = अग्नि रूप तीसरा नेत्र। **सुरवाहिनी** = गंगा। **पुरमथनस्य** = पुर के शत्रु (शिव का)। **रहोऽपि** = एकान्त भी। **संसद्** = सभा। **विधुः** = चन्द्रमा।

अर्थ– पार्वती जी अपनी सखी से कहती हैं कि शिव जी के वक्षस्थल पर सर्प रहता है, मस्तक में अग्निरूपी नेत्र (तीसरी रहती है), सिर पर चन्द्रमा तथा जटाओं में गंगा रहती हैं। अतः जिसके पति एकान्त में भी एक सभा के समान हों तो उससे गोपनीय बात कैसे कह सकती हैं।

श्लोक ५ अन्वय– एकेन राजहंसेन सरसः या शोभा भवेत् सा परितः तीरवासिना वक सहस्रेण न।

शब्दार्थ– **एकेन** = एक से। **राजहंसेन** = हंस से। **या** = जो। **शोभा** = सुन्दरता। **सरसः** = तालाब की। **भवेत्** = होती है। **सा** = उसके। **परितः** = चारों ओर। **तीरवासिना** = तीर में स्थित। **वक** = बगुला। **सहस्रेण** = हजारों। **न** = नहीं।

अर्थ– एक हंस की उपस्थिति में तालाब की जो शोभा होती है वैसी शोभा तालाब के चारों ओर किनारे पर उपस्थित हजारों बगुलों से भी नहीं हो सकती।

श्लोक ६. अन्वय– जलधर! अहं नीलकण्ठः अस्मि तव शब्दमात्रेण तुष्यामि। अहं खलु चातकः इव भवतः जीवनं न याचे।

शब्दार्थ– **जलधर** = हे बादल। **अस्मि** = हूँ। **तव** = आपके। **शब्दमात्रेण** = शब्द मात्र से। **तुष्यामि** = प्रसन्न होना। **खलु** = निश्चय ही। **चातकः** = पपीहा (पक्षी)। **इव** = तरह। **भवतः** = आप से। **याचे** = माँगता है। **जीवनं** = जीवन को।

अर्थ– हे बादल! मैं नीलकण्ठ मोरवाला हूँ जो कि तुम्हारे शब्दमात्र को ही सुनकर प्रसन्न हो जाता हूँ। मैं आप से पपीहा के समान जीवन को नहीं माँगता हूँ।

श्लोक ७. अन्वय– अग्निदाहे, छेदे, निकषे वा मे दुःखं न, यत् गुञ्जया सह तोलनम् तत् एव महद्दुःखम्।

शब्दार्थ– **अग्निदाहे** = अग्नि में जलाने पर। **छेदे** = काटने पर। **निकषे** = कसौटी पर घिसने पर। **वा** = या। **मे** = मुझे। **दुःख** = कष्ट। **न** = नहीं। **गुञ्जया** = घुमुची। **महद्** = बड़ा।

अर्थ– सोना कहता है कि मुझे जलाने पर, काटने पर, कसौटी पर घिसे जाने में कोई कष्ट नहीं होता परन्तु तभी कष्ट होता है कि मुझे एक घुमुची से तोलते हैं।

श्लोक ८. अन्वय– सुमुखः अपि सुवृत्तः अपि सन्मार्गपतितः अपि (सन्) सतां पादलग्नः अपि कण्टकः वै व्यथयति एव।

शब्दार्थ– **सुमुखः** = सुन्दर मुख वाला। **सुवृत्तः** = सुन्दर गोलाईवाला। **सन्मार्ग** = अच्छे रास्ते पर। **पतितः** = पड़ा हुआ। **सतां** = सज्जनों के। **पादलग्नः** = पैर में चुभने पर। **अपि** = भी। **कण्टकः** = काँटा। **वै** = वह। **व्यथयति** = कष्ट देता है।

अर्थ– काँटा चाहे जितना सुन्दर मुखवाला हो, सुडौल हो, अच्छे मार्ग पर भी पड़ा हो, चाहे सज्जन के पैर में ही चुभा हो परन्तु कष्ट ही दिया करता है।

श्लोक ९. अन्वय– अयि कस्तूरि! पामरैः पङ्कशङ्कया त्यक्ता असि, खेदेन अलं किं महीतले भूपालाः न सन्ति।

शब्दार्थ– **अयि** = अरे। **पामरैः** = मूर्खों द्वारा। **पङ्क** = कीचड़। **शङ्क** = शंका। **त्यक्ता** = त्याग देते हैं। **खेदेन** = दुःख। **अलं** = मत। **महीतले** = पृथ्वी पर। **भूपालाः** = राजा।

अर्थ– हे कस्तूरी! यदि मूर्खों ने तुम्हें कीचड़ समझकर त्याग दिया हो तो दुःख करने की बात नहीं है, क्योंकि संसार में तुम्हारा (कस्तूरी का) महत्त्व समझनेवाला राजा है।

4. भारतदेशः

श्लोक १. अन्वय– देवाः किल गीतकानि गायन्ति, स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भारतभूमिभागे ये सुरत्वात् भूयः पुरुषाः भवन्ति, ते तु धन्याः।

शब्दार्थ– **देवाः** = देवगण। **किल** = अवश्य ही। **गीतकानि** = गीत। **गायन्ति** = गाते हैं। **स्वर्गापवर्गा** = स्वर्ग और मोक्ष प्राप्ति। **स्पदहेतुभूते** = दिलाने का जो कारण है। **सुरत्वात्** = देवता से। **भूयः** = फिर। **पुरुषाः** = पुरुष। **ते** = वे। **तु** = निश्चय ही। **धन्याः** = धन्य है।

अर्थ– देवता भी अवश्य ही गीत गाते हैं कि जो स्वर्ग और मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप भारत की धरती पर जन्म लेकर देवता से पुनः मनुष्य बन जाते हैं, वे धन्य हैं।

श्लोक २. अन्वय– ते तु ताम् कर्ममहीम् अवाप्य असंकल्पित तत् फलानि कर्माणि परमात्मभूते विष्णौसंन्यस्य अमलाः (सन्तः) तस्मिन् अनन्ते लयं प्रयान्ति।

शब्दार्थ– **ते** = वे सब। **कर्ममहीम्** = कर्मभूमि भारत। **अवाप्य** = प्राप्त करके। **असंकल्पित** = इच्छा। **परमात्मभूते** = परमात्मा रूप। **संन्यस्य** = समर्पित करके। **अमलाः** = पापरहित। **अनन्ते** = परमात्मा में।

अर्थ– वे मनुष्य जिन्होंने इस भारत देश में जन्म लिया, कर्मफल की इच्छा न करते हुए किये गये कर्मों को ईश्वर को अर्पण करके निर्मल होकर उस परमात्मा में ही विलीन हो जाते हैं।

श्लोक ३. अन्वय– अहो सप्तसमुद्रवत्याः भुवः द्वीपेषु वर्षेषु एतत् अधिपुण्यम् अस्ति। यत्रत्यजनाः मुरारेः अवतारवन्ति भद्राणि कर्माणि गायन्ति।

शब्दार्थ– **अहो** = अरे। **सप्तसमुद्रवत्या** = सात समुद्रवाली। **भुवः** = पृथ्वी के। **द्वीपेषु** = द्वीपों में। **वर्षेषु** = देशों में। **अधिपुण्यं** = विशेष पुण्यवान। **यत्रत्यजनाः** = जहाँ के लोग। **अवतारवन्ति** = अवतारों को। **भद्राणि** = कल्याणकारी।

अर्थ– अरे सात समुद्रोंवाली पृथ्वी के सभी द्वीपों और देशों में यह भारतवर्ष विशेष पुण्यवान है। यहाँ के मनुष्य विष्णु के पवित्र कर्मों और कल्याणकारी अवतारों के चरित्रों का गान करते हैं।

श्लोक ४. अन्वय– अहो यैः भारताजिरे नृषु मुकुन्दसेवौपयिकं जन्म लब्धम्, अमीषां किम् शोभनम् अकारि? हरिः एषां स्वयं प्रसन्नः स्विदुत हि स्पृहा।

शब्दार्थ– **अहो** = अरे। **भारताजिरे** = भारत के आँगन में। **नृषु** = मनुष्यों में। **मुकुन्द सेवौपयिकं** = श्रीकृष्ण की सेवा ही जिसका उपाय है। **स्पृहा** = इच्छा। **नः** = हमारी। **अमीषां** = इन लोगों द्वारा। **शोभनं** = सुन्दर। **उत** = अथवा।

अर्थ– देवगण कहते हैं कि जो भारत के आँगन में जन्म पाये हैं, उन्होंने कौन से शुभ कर्म किये हैं? वह तो श्रीकृष्ण की सेवा करने पर ही मिलता है। हमारी भी यही इच्छा है कि हमें भारत में जन्म मिले।

श्लोक ५. अन्वय– कल्पायुषां पुनर्भवात् स्थानजयात् क्षणायुषां भारतभूजयः वरम्। मनस्विनः क्षणेन मर्त्येन कृतं संन्यस्य हरेः अभयं पदं संयान्ति।

शब्दार्थ– **कल्पायुषां** = एक कल्प की उम्रवाले। **पुनर्भवात्** = बार-बार जन्म लेने से। **स्थानजयात्** = लोकों में जन्म लेने की अपेक्षा। **क्षणायुषां** = क्षणभर की आयुवालों का। **भारतभूजयः** = भारत की भूमि में जन्म लेना। **वरम्** = (श्रेष्ठ) महान्। **संन्यस्य** = सौंपकर। **हरेः** = विष्णु के। **संयान्ति** = प्राप्त करते हैं।

अर्थ– कल्पों की आयु को त्यागकर क्षण भर की आयु की कामना कर भारत की भूमि पर जन्म लेना बहुत उत्तम है, क्योंकि वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

श्लोक ६. अन्वय– यदि नः स्विष्टस्य, सूक्तस्य कृतस्य तु स्वर्गसुखावशेषितम् (अस्ति), तर्हि तेन नः अजनाभे स्मृतिमत् जन्म स्यात्। यत् भजतां हरिः शम् तनोति।

शब्दार्थ– **नः** = हमारा। **स्विष्टस्य** = अच्छे संकल्प। **कृतस्य** = कर्म का। **अवशेषितम्** = शेष सुख को। **अजनाभे** = भारतवर्ष में। **भजतां** = भजन।

अर्थ– देवता कहते हैं कि यदि हमारे स्वर्ग के सुखों में कुछ भी शेष रह गया हो, यदि हमने यज्ञरूपी पुण्य किया हो, यदि भगवान् अपना भजन करनेवालों को प्रसन्न करते हों, तो तेजस्वी पुरुषों की आभा से युक्त भारत देश में हमारा जन्म हो और हमें इसकी याद रहे।

श्लोक ७. अन्वय–अक्षय्यम् अमलं शुभं सुमहत् पुण्यम् सञ्चितम् वयं कदा नु भारतभूतले जन्म लप्स्याम:?

शब्दार्थ– **अक्षय्यम्** = समाप्त न होनेवाले। **अमलं** = पवित्र। **शुभं** = कल्याणकारी। **सुमहत्** = महान्। **सञ्चितं** = संचय कर लेना। **लप्स्यामः** = प्राप्त करेंगे।

अर्थ– देवता कहते हैं कि हमने अत्यन्त महान्, कभी समाप्त न होनेवाले पवित्र पुण्य का संचय कर लिया है किन्तु हमें भारतभूमि पर जन्म कब मिलेगा?

श्लोक ८. अन्वय– भारते जन्म संप्राप्य सत्कर्मसु पराङ्मुख: (य:), स: पीयूषकलशं हित्वा विषभाण्डम् इच्छति।

शब्दार्थ– **भारते** = भारत में। **सम्प्राप्य** = प्राप्त करके। **सत्कर्मसु** = अच्छे कर्मों से। **पराङ्मुखः** = विपरीत हुआ। **पीयूषकलशं** = अमृत का घड़ा। **हित्वा** = छोड़कर। **विषभाण्डम्** = जहर के घड़े को।

अर्थ– भारतवर्ष में जन्म लेकर जो शुभ कर्मों से विमुख रहता है, वह अमृत के घड़े को प्राप्त कर भी विष के घड़े की इच्छा करता है।

5. नारी-महिमा

श्लोक १. अन्वय– यत्र तु नार्य: पूज्यन्ते तत्र देवता: रमन्ते। यत्र एता: न पूज्यन्ते तत्र सकला: क्रिया: अफला: (भवन्ति)।

शब्दार्थ– **यत्र** = जहाँ। **नार्यस्तु** = नारियों की। **पूज्यते** = पूजा (आदर) होती है। **तत्र** = वहाँ। **देवता:** = देवता। **रमन्ते** = निवास करते हैं। **एताः** = इनकी। **सकलाः** = सम्पूर्ण। **क्रियाः** = कार्य। **अफलाः** = असफल।

अर्थ– कवि (ग्रन्थकार) ने कहा है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा (आदर) होती है वहाँ देवताओं का निवास रहता है। जहाँ इनका आदर नहीं होता वहाँ के सम्पूर्ण कार्य विफल अर्थात् असफल हो जाते हैं।

श्लोक २. अन्वय– स्त्रियां तु रोचमानायां तत् सर्वकुलं रोचते। तस्यां अरोचमानायां तु सर्वमेव न रोचते।

शब्दार्थ– **स्त्रियां** = स्त्रियों के। **रोचमानायां** = अच्छा होने पर (प्रसन्न होने पर)। **तत्** = वह। **सर्वकुलं** = सम्पूर्ण कुल को। **रोचते** = शोभित होता है। **सर्वम्** = सभी। **न** = नहीं।

अर्थ– स्त्रियों के प्रसन्न रहने से सम्पूर्ण कुल शोभित होता है। उनके अप्रसन्न रहने से कुछ भी नहीं शोभित होता है।

श्लोक ३. अन्वय–तस्मात् भूतिकामै: नरै: सत्कार्येषु उत्सवेषु च नित्यं एता: भूषणै: आच्छादनै: अशनै: च सदा पूज्या।

शब्दार्थ– **तस्मात्** = इसलिए। **भूतिकामैः** = कल्याण चाहनेवाले। **नरैः** = मनुष्यों से। **सत्कार्येषु** = अच्छे कार्यों पर। **भूषणैः** = अलंकार से। **आच्छादनैः** = वस्त्रों से। **अशनैः** = भोजन से। **सदा** = हमेशा। **पूज्या** = सम्माननीया।

अर्थ– इसलिए कल्याण चाहनेवाले मनुष्यों द्वारा शुभ कार्यों और उत्सवों के अवसर पर तथा नित्य आभूषण, वस्त्र, भोजन द्वारा नारियों का सम्मान करना चाहिए।

श्लोक ४. अन्वय–बहुकल्याणमीप्सुभि: पितृभि: भ्रातृभि: तथा पतिभि: देवरै: च एता: पूज्या: भूषयितव्या: च।

शब्दार्थ– **बहु** = बहुत। **कल्याणमीप्सुभिः** = कल्याण को चाहनेवाले। **पितृभिः** = पिता। **भ्रातृभिः** = भाई द्वारा। **पतिभिः** = पति के द्वारा। **देवरैः** = देवर के द्वारा। **भूषयितव्याः** = वस्त्र आभूषण से युक्त की जानी चाहिए।

अर्थ– बहुत कल्याण चाहनेवाले पिता, भाई, पति, देवर आदि को इन स्त्रियों का वस्त्र एवं आभूषण आदि से सम्मान करना चाहिए।

श्लोक ५. अन्वय– दश उपाध्यायान् आचार्य:, आचार्याणाम् शतं पिता, पितृन् सहस्रं तु माता गौरवेणातिरिच्यते।

शब्दार्थ– **दश** = दस। **उपाध्यायान्** = शिक्षकों से। **शतं** = सौ। **आचार्याणाम्** = आचार्यों से। **सहस्रं** = हजार गुना। **गौरवेणा**= गौरव से। **अतिरिच्यते** = बढ़कर होती है।

अर्थ– दस शिक्षकों से एक आचार्य (गुरु) श्रेष्ठ होता है, सौ आचार्यों से एक पिता, एक हजार पिताओं से एक माता श्रेष्ठ होती है। अत: माँ के बराबर गौरवपूर्ण कोई नहीं होता है।

श्लोक ६. अन्वय– पूजनीया महाभागा: पुण्याश्च गृहदीप्तय: स्त्रिय: गृहस्य श्रिय: उक्ता: तस्माद् विशेषत: रक्ष्या।

शब्दार्थ– **पूजनीया** = पूजा के योग्य। **महाभागाः** = महाभाग्यवान्। **पुण्याः** = पवित्र। **गृहदीप्तय**: = गृह की शोभा। **उक्ताः** = कही गयी है। **श्रियः** = लक्ष्मी। **तस्माद्** = इसलिए। **विशेषतः** = विशेष। **रक्ष्या** = रक्षा के योग्य।

अर्थ– पूजनीय, महाभाग्यवती, पुण्यशीला, पवित्र गृहशोभा और गृहलक्ष्मी नारी ही कही जाती है इसलिए नारी विशेष रक्षणीय है।

6. क्रियाकारक-कुतूहलम्

(विभक्ति-परिचय:)

श्लोक १. अन्वय– यत्र उद्यम:, साहसं, धैर्यं, बुद्धि:, शक्ति:, पराक्रम: एते षड् वर्तन्ते तत्र देव सहायकृत (भवति)।

शब्दार्थ– **यत्र** = जहाँ। **उद्यमः** = परिश्रम। **साहसं** = हिम्मत। **धैर्यं** = धीरज। **वर्तन्ते** = रहते हैं। **बुद्धिः** = बुद्धि। **शक्तिः** = शक्ति। **पराक्रमः** = पराक्रम। **एते** = ये। **तत्र** = जहाँ। **देव** = देवता। **सहायकृत्** = सहायता करनेवाला। **भवति** = होता है।

अर्थ– जहाँ पर उद्यम, हिम्मत, धीरज, बुद्धि, शक्ति और पराक्रम ये छह उपस्थित होते हैं वहाँ पर ईश्वर भी सहायता करता है।

श्लोक २. अन्वय– विनय: वंशम् आख्याति, भाषितं देशम् आख्याति, सम्भ्रम: स्नेहम् आख्याति, वपु: भोजनम् आख्याति।

शब्दार्थ– **विनयः** = विनय। **वंशम्** = वंश को। **आख्याति** = बताती है। **भाषितं** = वाणी। **देशम्** = देश को। **सम्भ्रमः** = हाव-भाव। **स्नेहं** = प्रेम को। **वपुः** = शरीर। **भोजनम्** = भोजन को।

अर्थ– नम्रता वंश को बताती है, वाणी देश को बताती है, हाव-भाव प्रेम को बताता है तथा शरीर भोजन को बता देता है।

श्लोक ३. अन्वय– मृगा: मृगै: संगम् अनुव्रजन्ति, गाव: गोभि:, तुरगा: तुरगै: अनुव्रजन्ति, मूर्खा: मूर्खै:, सुधिय: सुधीभि: अनुव्रजन्ति, सख्यम् समानशील व्यसनेषु।

शब्दार्थ– **मृगाः** = हिरन। **मृगैः** = हिरनों के। **संगम** = साथ। **अनुव्रजन्ति** = अनुसरण करते हैं अर्थात् पीछे चलते हैं। **तुरगाः** = घोड़े। **तुरगैः** = घोड़ों के साथ। **सुधियः** = बुद्धिमान। **सुधीभिः** = विद्वानों के। **सख्यम्** = मित्रता। **समानशीलव्यसनेषु** = जिनका स्वभाव और लगाव एक समान हो। **गावः** = गायें।

अर्थ– हिरन हिरनों के साथ, गायें गायों के साथ, घोड़े घोड़ों के साथ, मूर्ख मूर्खों के साथ तथा बुद्धिमान् बुद्धिमानों के साथ चलते हैं। समान स्वभाववालों में विपत्ति के समय मित्रता हो जाती है।

श्लोक ४. अन्वय– खलस्य विद्या विवादाय, धनं मदाय, शक्ति: परेषां परिपीडनाय। एतद् विपरीतम् साधो: विद्या ज्ञानाय, धनं दानाय, शक्ति रक्षणाय (भवति)।

शब्दार्थ– **खलस्य** = दुष्ट की। **विद्यां** = विद्या। **विवादाय** = झगड़े के लिए। **धनं** = धन। **मदाय** = अहंकार के लिए। **परेषां** = दूसरों के। **परिपीडनाय** = सताने के लिए। **एतद्** = इसके। **साधोः** = सज्जन। **ज्ञानाय** = ज्ञान के लिये। **दानाय** = दान के लिए। **रक्षणाय** = रक्षा के लिए।

अर्थ– दुष्ट की विद्या विवाद के लिए, धन अहंकार के लिए, शक्ति दूसरों को सताने के लिए होती है। इसके विपरीत सज्जन की विद्या ज्ञान के लिए, धन दान के लिए, शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है।

श्लोक ५. अन्वय– क्रोधात् संमोह: संमोहात् स्मृतिविभ्रम:, स्मृति भ्रंशात् बुद्धिनाश: भवति, बुद्धिनाशात् च (मानव:) प्रणश्यति।

शब्दार्थ– **क्रोधात्** = क्रोध से। **संमोहः** = अज्ञान। **संमोहात्** = अज्ञानता से। **स्मृतिविभ्रमः** = बुद्धि का भ्रमित होना। **भ्रंशात्** = नष्ट होने से। **प्रणश्यति** = नष्ट हो जाता है।

अर्थ– क्रोध से अज्ञानता होती है, अज्ञानता से स्मृतिभ्रम (बुद्धि भ्रमित हो जाती है), स्मृतिभ्रम से बुद्धि नष्ट हो जाती है, बुद्धि के नाश होने से मनुष्य नष्ट हो जाता है।

श्लोक ६. अन्वय– अलसस्य विद्या कुतः, अविद्यस्य धनं कुतः, अधनस्य मित्रं कुतः, अमित्रस्य सुखं कुतः।

शब्दार्थ– **अलस्य** = आलसी को। **कुतः** = कहाँ। **अविद्यस्य** = बिना विद्या के। **अधनस्य** = बिना धन के। **अमित्रस्य** = बिना मित्र के।

अर्थ– आलसी को विद्या कहाँ, बिना विद्या के धन कहाँ, बिना धन के मित्र कहाँ, बिना मित्र के सुख कहाँ।

श्लोक ७. अन्वय– शैले-शैले माणिक्यं न, गजे-गजे मौक्तिकं न, सर्वत्र साधवः न हि, वने-वने चन्दनं न।

शब्दार्थ– **शैले-शैले** = पहाड़-पहाड़ पर। **माणिक्यं** = हीरा। **न** = नहीं। **गजे-गजे** = हाथी-हाथी में। **मौक्तिकं** = मोती। **सर्वत्र** = सभी जगह। **साधवः** = सज्जन। **वने-वने** = जंगल-जंगल में। **चन्दनं** = चन्दन।

अर्थ– प्रत्येक पहाड़ पर मणि नहीं होती, प्रत्येक हाथी में मोती नहीं होते, सभी जगहों पर सज्जन पुरुष भी नहीं होते तथा प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता।

(लकार परिचयः)

श्लोक १. अन्वय– पापात् निवारयति, हिताय योजयते, गुह्यं निगूहति, गुणान् प्रकटीकरोति, आपद्गतं न जहाति काले च ददाति सन्तः इदम् सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्ति।

शब्दार्थ– **पापान्निवारयति** = पाप से रोकता है। **हिताय** = हित के लिए। **योजयते** = लगाता है। **गुह्यं** = गुप्त बात का। **निगूहति** = छिपाता है। **आपद्गतं** = आपत्ति के समय। **जहाति** = छोड़ता है। **इदम्** = ये। **सन्मित्रलक्षणं** = सज्जनों के लक्षण। **प्रवदन्ति** = कहते हैं।

अर्थ– सच्चे मित्र के लक्षण ये हैं–वह पाप से बचाता है, हित के कार्य में लगाता है, मित्र की छिपाने योग्य बातों को छिपाता है, गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति में साथ नहीं छोड़ता।

श्लोक २. अन्वय– नीतिनिपुणाः निन्दन्तु वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु वा गच्छतु, मरणम् अद्य एव अस्तु युगान्तरे वा, धीराः न्यायात् पथः पदम् न प्रविचलन्ति।

शब्दार्थ– **नीतिनिपुणाः** = नीति के जाननेवाले। **निन्दन्तु** = निन्दा करे। **स्तुवन्तु** = प्रशंसा करे। **समाविशतु** = आ जाये। **युगान्तरे** = युगों के बाद। **न्यायात् पथः** = न्याय के मार्ग से। **प्रविचलन्ति** = हटते हैं।

अर्थ– नीतिवान् पुरुष चाहे निन्दा करे या प्रशंसा, धन आये अथवा इच्छानुसार चला जाये, मौत आज हो या युगों के बाद किन्तु धैर्यवान पुरुष न्याय के रास्ते से पीछे नहीं हटते हैं।

श्लोक ३. अन्वय– यः अखिलाः विद्याः अपठत्, सर्वा कलाः अशिक्षत, सकलं वेद्यम् अजानात्, सः वै योग्यतम् नरः।

शब्दार्थ– **यः** = जो। **अखिलाः** = सम्पूर्ण। **विद्याः** = विद्या को। **अपठत्** = पढ़ लिया। **सर्वा** = सभी। **कलाः** = कलाओं में। **अशिक्षत** = सीख लिया। **सकल** = सम्पूर्ण। **वेद्यम्** = जानने योग्य। **अजानात्** = जान लिया। **सः** = वह। **योग्यतम्** = अधिक योग्य। **नरः** = मनुष्य। **वै** = अवश्य ही।

अर्थ– जिसने सभी विद्या पढ़ ली है, सम्पूर्ण कलाओं को सीख लिया है, सभी जानने योग्य बातों को जान लिया है, वह अवश्य ही सबसे अधिक योग्य है।

श्लोक ४. अन्वय– दृष्टिपूतं पादं न्यसेत्, वस्त्रपूतं जलं पिबेत्, सत्यपूतां वाचं वदेत्, मनः पूतं समाचरेत्।

शब्दार्थ– **दृष्टिपूतं** = दृष्टि से पवित्र। **पादं** = पैर। **न्यसेत्** = रखना चाहिए। **वस्त्रपूतं** = कपड़े से छानकर। **सत्यपूतां** = सत्य से पवित्र। **वाचं** = वाणी को। **मनः पूतम्** = मन से पवित्र। **समाचरेत्** = आचरण करना चाहिए।

अर्थ– दृष्टि से पवित्र पैर आगे रखना चाहिए, वस्त्र से छानकर जल पीना चाहिए, सत्य से पवित्र वाणी बोलनी चाहिए, मन से पवित्र आचरण करना चाहिए।

श्लोक ५. अन्वय– रात्रि गमिष्यति सुप्रभातं भविष्यति, भास्वान् उदेष्यति पंकजश्री हसिस्यति इत्थं कोशगते द्विरेफे विचिन्तयति हा हन्त हन्त गजः नलिनीम् उज्जहार।

शब्दार्थ– **रात्रि** = रात्रि। **गमिष्यति** = जाती है। **सुप्रभातम्** = सबेरा। **भविष्यति** = होगा। **भास्वान्** = सूर्य। **उदेष्यति** = उदय होंगे। **पंकजश्री** = कमल की शोभा। **हसिष्यति** = बढ़ेगी। **इत्थं** = इस प्रकार। **कोशगते** = कमलकोश के भीतर। **द्विरेफे** = भौंरे के। **हन्त** = हाय। **गजः** = हाथी ने। **उज्जहार** = उखाड़ दिया।

अर्थ– रात्रि जाती है सुन्दर सबेरा होगा, सूर्य उदय होगा कमलों की शोभा बढ़ेगी, कमल की पंखुड़ियों में बन्द भौंरे के द्वारा यह विचार किये जाने के समय दुर्भाग्य है कि हाथी ने उस कमलिनी को उखाड़ कर फेंक दिया।

7. नीति-नवनीतम्

श्लोक १. अन्वय– राजन्! सततं प्रियवादिनः पुरुषा सुलभाः, अप्रियस्य पथ्यस्य तु वक्ता श्रोता च दुर्लभः।

शब्दार्थ– **राजनः** = हे राजा। **सततं** = सदा। **प्रियवादिनः** = प्रिय बोलनेवाले। **पुरुषा** = पुरुष। **सुलभाः** = सरलता से मिल जाते हैं। **पथ्यस्य** = हितकर। **वक्ता** = कहनेवाला। **श्रोता** = सुननेवाला। **दुर्लभः** = कठिन है।

अर्थ– विदुर जी कह रहे हैं कि हे राजन्! प्रिय बोलनेवाले मनुष्य तो सरलता से मिल जाते हैं, लेकिन हितकर बात कहनेवाले अथवा सुननेवाले बड़ी कठिनता से ही मिलते हैं।

श्लोक २. अन्वय– कुलस्य अर्थे एकं त्यजेत्, ग्रामस्य अर्थे कुलं त्यजेत्, जनपदस्य अर्थे ग्रामं त्यजेत् , आत्म अर्थे पृथिवीं त्यजेत्।

शब्दार्थ– **कुलस्य** = वंश की। **अर्थे** = उन्नति में। **एकं** = एक। **त्यजेत्** = छोड़ देना चाहिए। **ग्रामस्य** = गाँव की। **कुलम्** = परिवार को। **जनपदस्य** = जनपद की। **ग्रामं** = ग्राम को। **पृथिवीं** = पृथ्वी को।

अर्थ– वंश की उन्नति के लिए यदि कोई भी एक व्यक्ति बाधक हो तो उसे छोड़ देना चाहिए, गाँव की उन्नति के लिए वंश छोड़ देना चाहिए, जिले की उन्नति के लिए गाँव त्याग देना चाहिए और आत्मा के लिए इस पृथ्वी को भी त्याग देना चाहिए।

श्लोक ३. अन्वय– धर्मसर्वस्वं श्रूयतां श्रुत्वा च अपि अवधार्यताम्, आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

शब्दार्थ– **धर्मसर्वस्वं** = धर्म का सार। **श्रूयतां** = सुनो। **श्रुत्वा** = सुनकर। **अवधार्यताम्** = विचार करो। **आत्मनः** = अपने लिए। **प्रतिकूलानि** = विपरीत। **परेषां** = दूसरों को। **समाचरेत्** = आचरण करना चाहिए।

अर्थ– विदुर जी कहते हैं कि पहले धर्म के सार को सुनो और सुनकर उस पर विचार करना चाहिए, जो कार्य अपने प्रति अच्छा न लगे उस कार्य को दूसरों के साथ नहीं करना चाहिए।

श्लोक ४. अन्वय– अविश्वस्ते न विश्वसेत्, विश्वस्ते न अतिविश्वसेत्, विश्वासात् उत्पन्नं भयं मूलानि अपि निकृन्तति।

शब्दार्थ– **अविश्वस्ते** = विश्वास न करने योग्य पर। **विश्वसेत्** = विश्वास करना चाहिए। **निकृन्तति** = काट देता है। **भयं** = डर। **मूलान्यपि** = जड़ों को भी।

अर्थ– मनुष्य अविश्वसनीय पर विश्वास न करे, विश्वसनीय पर बहुत अधिक विश्वास न करे, क्योंकि विश्वास से उत्पन्न भय पूर्ण रूप से नष्ट कर देता है।

श्लोक ५. अन्वय– अक्रोधेन क्रोधं जयेत्, साधुना असाधुं जयेत्, दानेन कदर्यं जयेत्, सत्येन च अनृतं जयेत्।

शब्दार्थ– **अक्रोधेन** = नम्रता से। **क्रोधं** = क्रोध को। **जयेत्** = जीतना चाहिए। **असाधुं** = दुष्ट को। **साधुना** = सज्जनता से। **कदर्यं** = कंजूसी को। **दानेन** = दान से। **सत्येन** = सत्य से। **अनृतं** = झूठ को।

अर्थ– नम्रता से क्रोध को जीतना चाहिए, सज्जनता से दुष्टता को जीतना चाहिए, दान से कंजूस को जीतना चाहिए तथा सत्य से झूठ को जीतना चाहिए।

श्लोक ६. अन्वय– वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्, वित्तम् आयाति याति च, वित्तत: क्षीण: अक्षीण: (भवति) वृत्तत: हत: तु हत: (एव)।

शब्दार्थ– **वृत्तं** = चरित्र की। **यत्नेन** = यत्नपूर्वक। **संरक्षेत्** = रक्षा करनी चाहिए। **वित्तम्** = धन। **आयाति** = आता है। **याति** = चला जाता है। **क्षीणः** = नष्ट हुआ। **अक्षीणः** = बिना नष्ट हुआ। **वृत्ततः** = चरित्र से। **हतः** = गिरा हुआ।

अर्थ– व्यक्ति को चरित्र की यत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिए, धन तो आता है और चला जाता है, धन नष्ट हो गया तो कुछ भी नष्ट नहीं हुआ किन्तु चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया।

श्लोक ७. अन्वय– इह पुरुषे शीलं प्रधानं तद् यस्य प्रणश्यति तस्य न जीवितेन न धनेन न बन्धुभि: अर्थ: (अस्ति)।

शब्दार्थ– **इह** = इस लोक में। **पुरुषे** = मनुष्य में। **शीलं** = व्यवहार (सदाचार)। **प्रधानं** = मुख्य। **यस्य** = जिसका। **प्रणश्यति** = नष्ट हो जाता है। **जीवितेन** = जीवित रहने से। **धनेन** = धन से। **बन्धुभिः** = भाई-बन्धुओं से।

अर्थ– इस लोक में मनुष्य का सदाचार ही मुख्य होता है। जिसका चरित्र नष्ट हो जाता है, उसके जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं होता। धन का होना व भाई बन्धुओं का होना भी व्यर्थ ही होता है।

श्लोक ८. अन्वय– दिवसेन तत् कुर्यात् येन रात्रौ सुखं वसेत्, अष्टमासेन एव तत् कुर्यात् येन वर्षा: सुखं वसेत्।

शब्दार्थ– **दिवसेन** = दिन से। **तत्** = वह। **कुर्यात्** = करे। **येन** = जिसे। **रात्रौ** = रात में। **वसेत्** = रहे। **अष्ट** = आठ। **मासेन** = महीने से। **वर्षाः** = वर्षा के।

अर्थ– दिन भर में वह कार्य कर लेना चाहिए जिससे रात्रि सुख से व्यतीत हो तथा आठ महीने में वह कार्य कर लेना चाहिए जिससे वर्षा के चार माह भी सुख से व्यतीत हों।

श्लोक ९. अन्वय– पूर्वे वयसि तत् कुर्यात् येन वृद्ध: सुखं वसेत्। जीवेन यावत् तत् कुर्यात् येन प्रेत्य सुखं वसेत्।

शब्दार्थ– **पूर्वे** = प्रथम। **वयसि** = अवस्था में। **तत्** = वह। **कुर्यात्** = करना चाहिए। **येन** = जिससे। **वृद्धः** = बुढ़ापा। **सुखं** = सुख से। **वसेत्** = बीते। **जीवेन** = जीवन में। **प्रेत्य** = मरकर।

अर्थ– व्यास जी ने कहा कि मनुष्य को अपनी पहली अवस्था में वह कार्य करना चाहिए जिससे वृद्धावस्था सुख से बीते और सम्पूर्ण जीवन में वह काम करना चाहिए जिससे मरने के बाद भी सुख मिले।

श्लोक १०.अन्वय– शूर: च, कृतविद्य: च, य: च सेवितुं जानाति (एते) त्रय: पुरुषा: सुवर्ण- पुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति।

शब्दार्थ– **शूरः** = बहादुर। **विद्यः** = विद्वान्। **सुवर्णपुष्पां** = हरी-भरी। **एते** = ये। **त्रयः** = तीन। **सेवितुं** = सेवा करना जाननेवाले।

अर्थ– बहादुर, विद्वान् और जो सेवा करना जानते हैं ये तीनों ही धन-धान्य से पूर्ण पृथ्वी के सुखों को भोग सकते हैं।

श्लोक ११.अन्वय– राजन्! नित्यम् अर्थागम:, अरोगिता च, प्रिया भार्या प्रियवादिनी च, वश्य: पुत्र: च, अर्थकरी विद्या च (इमानि) जीवलोकस्य षड् सुखानि (सन्ति)।

शब्दार्थ– **नित्यं** = प्रतिदिन। **अर्थ** = धन। **आगमः** = आता है। **आरोगिता** = स्वस्थ रहना। **प्रियवादिनी** = मधुभाषी। **प्रिया** = प्रिय। **भार्या** = पत्नी। **वश्यः** = आज्ञाकारी। **अर्थकरी** = धन देनेवाली।

अर्थ– व्यास जी ने धृतराष्ट्र से इस प्राणिलोक में मनुष्य के छह सुख बताये हैं– प्रतिदिन धन का आना-जाना, अच्छा स्वास्थ्य होना, मीठी वाणी, मधुभाषी पत्नी, आज्ञाकारी पुत्र और धन को पैदा करनेवाली विद्या।

8. यक्ष-युधिष्ठिर-संलापः

श्लोक १. अन्वय– भूमे: किंस्विद् गुरुतरम्? खात् किंस्वित् उच्चतरम्? वायो: किंस्वित् शीघ्रतरं? तृणात् किंस्वित् बहुतरम्?

शब्दार्थ– **भूमेः** = भूमि से। **किंस्विद्** = क्या। **गुरुतरम्** = भारी। **खात्** = आकाश से। **उच्चतरम्** = ऊँचा। **वायोः** = वायु से। **शीघ्रतरं** = अधिक तीव्रगामी। **तृणात्** = तिनके से। **बहुतरम्** = अधिक हल्का, अधिक संख्या में।

अर्थ– यक्ष कहता है कि भूमि से अधिक भारी क्या है? आकाश से अधिक ऊँचा क्या है? वायु से अधिक तीव्रगामी क्या है? और तिनके से अधिक हल्का क्या है?

श्लोक २. अन्वय– भूमेः माता गुरुतरा, खात् पिता उच्चतरः, वातात् मनः शीघ्रतरं, तृणात् चिन्ता बहुतरी।

शब्दार्थ– **भूमेः** = भूमि से। **गुरुतरं** = बहुत भारी। **बहुतरी** = हल्का।

अर्थ– यक्ष के प्रश्न का उत्तर युधिष्ठिर देते हैं कि माता भूमि से भारी है, आकाश से पिता उच्च होता है, मन वायु से अधिक तेज चलनेवाला तथा चिन्ता तिनके से भी अधिक हल्की होती है।

श्लोक ३. अन्वय– सुप्तं किंस्वित् न निमिषति? जातं च किंस्वित् न इङ्गते? हृदयं कस्यस्वित् न अस्ति? वेगेन कस्विद् वर्धते।

शब्दार्थ– **सुप्तं** = सोता हुआ। **जातं** = उत्पन्न हुआ। **इङ्गते** = चेष्टा करता है। **निमिषति** = पलक गिराता है। **वेगेन** = तेजी के साथ।

अर्थ– यक्ष ने युधिष्ठिर से पुनः प्रश्न किया कि कौन सोता हुआ भी पलक नहीं गिराता है? कौन जन्म लेकर चेष्टा नहीं करता है? कौन है जिसके हृदय नहीं होता? कौन है जो तेजी के साथ बढ़ता है।

श्लोक ४. अन्वय– सुप्तः मत्स्यः न निमिषति, जातं च अण्डं न इङ्गते, अश्मनः हृदयं न अस्ति, वेगेन नदी वर्धते।

शब्दार्थ– **मत्स्यः** = मछली। **सुप्तः** = सोते हुए। **न निमिषति** = पलक नहीं गिराती। **अण्डं** = अण्डा। **अश्मनः** = पत्थर के। **वर्धते** = बढ़ती है। **वेगेन** = वेग से।

अर्थ– मछली सोते हुए पलक नहीं गिराती, अण्डा पैदा होकर भी चेष्टा नहीं करता है, पत्थर के हृदय नहीं होता है और नदी वेग से बढ़ती है।

श्लोक ५. अन्वय– प्रवसतः किंस्वित् मित्रं? गृहेसतः किंस्वित् मित्रं? आतुरस्य किं मित्रं? मरिष्यतः च किंस्वित् मित्रं?

शब्दार्थ– **प्रवसतः** = विदेश में रहनेवाले का। **गृहेसतः** = घर में रहने पर। **आतुरस्य** = बीमार का। **मरिष्यतः** = मरने पर।

अर्थ– विदेश में रहने पर मित्र कौन होता है? घर में रहते हुए मित्र कौन है? बीमार का मित्र कौन है तथा मरनेवाले का मित्र कौन है? ऐसा प्रश्न यक्ष ने किया।

श्लोक ६. अन्वय– प्रवसतो मित्रं विद्या, गृहेसतः मित्रं भार्या, आतुरस्य मित्रं भिषक्, मरिष्यतः मित्रं दानं (भवति)।

शब्दार्थ– **भार्या** = पत्नी। **भिषक्** = वैद्य।

अर्थ– विदेश में रहने पर विद्या मित्र होती है। गृह में रहने पर पत्नी मित्र होती है। रोगी या बीमार का मित्र वैद्य होता है और मरनेवाले का मित्र दान होता है, ऐसा उत्तर युधिष्ठिर ने दिया।

श्लोक ७. अन्वय– धन्यानां किंस्विद् उत्तमम्? धनानां किम् उत्तमं स्यात् ? लाभानाम् किं उत्तमं स्यात्? सुखानां किम् उत्तमं स्यात्?

शब्दार्थ– **धन्यानां** = धान्यों में। **किंस्विद्** = कौन। **उत्तमं** = उत्तम। **धनानाम्** = धनों में। **लाभानां** = लाभों में।

अर्थ– धान्यों में उत्तम कौन है? धनों में उत्तम क्या है? लाभों में उत्तम क्या है? सुखों में उत्तम क्या है? यक्ष ने प्रश्न किया।

श्लोक ८. अन्वय– दाक्ष्यं धन्यानाम् उत्तमम्, श्रुतं धनानाम् उत्तमम्, आरोग्यं लाभानां श्रेयः, तुष्टिः सुखानाम् उत्तमा।

शब्दार्थ– **दाक्ष्यं** = निपुणता (कुशलता)। **श्रुतम्** = वेदशास्त्र (शास्त्रज्ञान)। **आरोग्यं** = नीरोग (स्वस्थ)। **तुष्टि** = सन्तोष। **श्रेयः** = अधिक प्रशस्त।

अर्थ– धान्यों में उत्तम निपुणता है, धनों में उत्तम शास्त्रज्ञान है, लाभों में उत्तम नीरोगता है और सुखों में उत्तम सन्तोष है।

श्लोक ९. अन्वय– किं नु हित्वा प्रियो भवति? किं नु हित्वा न शोचति? किं नु हित्वा अर्थवान् भवति? किं नु हित्वा सुखी भवेत्?

शब्दार्थ– **किं** = क्या। **हित्वा** = छोड़कर। **प्रियो** = प्रिय। **भवति** = होता है। **शोचति** = दुःखी होता है। **अर्थवान्** = धनवान्।

अर्थ– मनुष्य क्या छोड़कर प्रिय बन जाता है? क्या छोड़कर वह दुःखी नहीं रहता? क्या छोड़कर वह धनवान बन जाता है और क्या छोड़कर वह सुखी हो जाता है?

श्लोक १०.अन्वय– मानं हित्वा प्रियः भवति, क्रोधं हित्वा न शोचति, कामं हित्वा अर्थवान् भवति, लोभं हित्वा सुखी भवति।

शब्दार्थ– **मानं** = घमण्ड। **कामं** = कामना (इच्छा)। **अर्थवान्** = धनवान्।

अर्थ– मनुष्य घमण्ड को त्यागकर प्रिय होता है। क्रोध को त्यागकर दु:खी नहीं होता। इच्छाओं को त्यागकर धनवान् हो जाता है और लोभ का त्याग कर सुखी हो जाता है।

श्लोक ११.अन्वय– पुरुष: मृत: कथं स्यात् ? राष्ट्रं मृतं कथं भवेत् ? श्राद्धं कथं मृतं स्यात्? यज्ञ: कथं मृत: भवेत् ?

शब्दार्थ– **पुरुष:** = पुरुष। **मृत:** = मरा हुआ। **कथं** = कैसे। **स्यात्** = होता है। **श्राद्धं** = श्रद्धा से किया गया कार्य। **भवेत्** = होता है।

अर्थ– मनुष्य मरा हुआ कैसे होता है? राष्ट्र मरा हुआ कैसे होता है? श्रद्धा से किया गया कार्य मरा हुआ कैसे होता है? यज्ञ मरा हुआ कैसे होता है?

श्लोक १२. अन्वय– दरिद्र: पुरुष: मृत: (स्यात्), अराजकं राष्ट्रं मृतं (भवेत्), अश्रोत्रियं श्राद्धं मृत:, अदक्षिणो यज्ञस्तु मृत: (स्यात्)।

शब्दार्थ– **अराजकं** = बिना राजा के। **अश्रोत्रियं** = शास्त्रज्ञाता ब्राह्मण के बिना। **अदक्षिणा** = दक्षिणा बिना।

अर्थ– दरिद्र पुरुष मरा हुआ होता है, बिना राजा के राष्ट्र मरा हुआ होता है, शास्त्रविहीन ब्राह्मण के बिना श्राद्ध मरा हुआ होता है तथा दक्षिणा के बिना यज्ञ मरा हुआ होता है।

श्लोक १३. अन्वय– पुंसां दुर्जय: शत्रु क:? अनन्तक: व्याधि क:? साधु: कीदृश: स्मृत: असाधु: च कीदृश: स्मृत:?

शब्दार्थ– **पुंसां** = मनुष्य का। **दुर्जय:** = जिसे जीतना कठिन है। **अनन्तक:** = असीमित। **व्याधि** = रोग। **स्मृत:** = कहा गया है।

अर्थ– मनुष्यों का अजेय शत्रु कौन है? समाप्त न होनेवाला रोग कौन-सा है? सज्जन कैसा होता है और दुष्ट पुरुष कैसा होता है?

श्लोक १४. अन्वय– क्रोध: सुदुर्जय: शत्रु:, लोभ: अनन्तक: व्याधि, सर्वभूतहित: साधु:, निर्दय: असाधु: स्मृत:।

शब्दार्थ– **सुदुर्जय:** = कठिनाई से जीते जानेवाला। **अनन्तक:** = अन्तरहित। **निर्दय:** = दयारहित। **सर्वभूतहित:** = सभी प्राणियों के हित में लगा रहनेवाला। **साधु:** = सज्जन। **असाधु:** = असज्जन। **व्याधि** = रोग।

अर्थ– क्रोध बड़ी कठिनाई से जीते जानेवाला शत्रु है, लोभ अन्तरहित रोग है। सभी प्राणिमात्र की भलाई करनेवाला ही साधु (सज्जन) है तथा निर्दय व्यक्ति ही दुर्जन (असाधु) कहा जाता है।

9. आरोग्य-साधनानि

श्लोक १. अन्वय– स्थैर्यार्था बलवर्धिनी च या शरीरचेष्टा इष्टा, (सा) देहव्यायामसंख्याता, तां मात्रया समाचरेत्।

शब्दार्थ– **स्थैर्य** = स्थिरता। **अर्था** = लिए। **बलवर्धिनी** = शक्ति के स्वभाव को बढ़ानेवाली। **च** = और। **या** = जो। **शरीरचेष्टा** = शरीर की क्रिया। **देहव्यायामसंख्याता** = शरीर की व्यायाम कही जाती है। **तां** = उसे। **मात्रया** = उचित मात्रा में। **समाचरेत्** = करना चाहिए।

अर्थ– शरीर की जो क्रिया स्थिरता तथा बल बढ़ाने के लिए होती है, वे शरीर का व्यायाम कही जाती है। उसे उचित मात्रा में करना चाहिए।

श्लोक २. अन्वय– व्यायामात् लाघवं कर्मसामर्थ्यं स्थैर्यं दु:खसहिष्णुता दोषक्षय: अग्निवृद्धिश्च उपजायते।

शब्दार्थ– **व्यायामात्** = व्यायाम से। **लाघवं** = फुर्ती। **कर्मसामर्थ्यं** = कार्य करने की शक्ति। **स्थैर्यं** = दृढ़ता। **दु:खसहिष्णुता** = सहनशीलता, कष्ट सहने की शक्ति। **दोषक्षय:** = दोष का नष्ट होना। **अग्निवृद्धि** = पाचनशक्ति का बढ़ना। **उपजायते** = उत्पन्न हो जाती है।

अर्थ– व्यायाम से शरीर में फुर्ती, काम को करने की शक्ति, दृढ़ता, दु:ख सहने की क्षमता, दोष का नष्ट होना (वात, पित्त, कफ आदि) तथा भोजन पचाने की शक्ति में वृद्धि होती है।

श्लोक ३. अन्वय– आत्महितैषिभिः पुम्भिः सर्वेषु ऋतुषु अहरहः बलस्य अर्धेन व्यायामः कर्त्तव्यः, अतः अन्यथा हन्ति।

शब्दार्थ– **आत्महितैषिभिः** = अपना कल्याण चाहनेवाले। **पुम्भिः** = पुरुषों द्वारा। **सर्वेषु** = सभी। **ऋतुषु** = ऋतुओं में। **अहरहः** = प्रतिदिन। **बलस्य अर्धेन** = आधी शक्ति के द्वारा। **कर्त्तव्यः** = करना चाहिए। **अतः अन्यथा** = इनसे भिन्न होने पर। **हन्ति** = मार देता है।

अर्थ– अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को सभी ऋतुओं में प्रतिदिन आधी शक्ति के द्वारा व्यायाम करना चाहिए। इसके विपरीत करने पर यह मार देता है, अतः बड़ी हानि शरीर को हो सकती है।

श्लोक ४. अन्वय– व्यायामं कुर्वतः जन्तोः हृदि स्थानस्थितो वायुः यदा वक्त्रं प्रपद्यते तद् बलार्धस्य लक्षणम्।

शब्दार्थ– **व्यायामं** = व्यायाम को। **कुर्वतः** = करते हुए। **जन्तोः हृदि** = प्राणी के हृदय में। **स्थानस्थितो** = उचित स्थान में स्थित। **वायुः** = वायु। **यदा** = जब। **वक्त्रं** = मुख में। **प्रपद्यते** = पहुँचने लगती है। **बलार्धस्य** = बल का आधा।

अर्थ– व्यायाम करते हुए प्राणी के हृदय में स्थित वायु जब मुख भाग में पहुँचने लगती है तो समझो यह आधी शक्ति होने का लक्षण है।

श्लोक ५. अन्वय– अतिव्यायामतः श्रमः क्लमः क्षयः तृष्णा रक्तपित्तं प्रतामकः कासः ज्वरः छर्दि च जायते।

शब्दार्थ– **अतिव्यायामतः** = अधिक व्यायाम करने से। **श्रमः** = थकान। **क्लमः** = मलिनता। **क्षयः** = रक्त आदि धातुओं का नष्ट होना। **तृष्णा** = प्यास। **रक्तपित्तं** = रक्त दोष। **प्रतामकः** = पतन। **कासः** = खाँसी। **ज्वरः** = बुखार। **छर्दि** = उल्टी। **जायते** = उत्पन्न होती है।

अर्थ– मात्रा से अधिक व्यायाम करने से थकान, मलिनता, धातुओं का ह्रास, रक्त-दोष, तपन, खाँसी, बुखार तथा सर्दी (उल्टी) उत्पन्न होती है।

श्लोक ६. अन्वय– बुद्धिमान् व्यायामहास्यभाष्याध्वग्राम्यधर्म प्रजागरान् उचितान् अपि अतिमात्रया न सेवेत।

शब्दार्थ– **बुद्धिमान्** = विवेकी। **हास्य** = हँसी। **भाष्य** = भाषण। **अध्व** = रास्ता चलना। **ग्राम्यधर्म** = स्त्री सहवास। **प्रजागरान्** = रात्रि जागरण। **अतिमात्रया** = बहुत मात्रा में। **न** = नहीं। **सेवेत** = करना चाहिए।

अर्थ– बुद्धिमान् को कभी भी अतिमात्रा में व्यायाम, हँसी-मजाक, भाषण, रास्ता चलना, स्त्री सहवास तथा रात्रि जागरण नहीं करना चाहिए।

श्लोक ७. अन्वय– शरीरायासजननं कर्म व्यायामसञ्ज्ञितम् (भवति) तत् कृत्वा तु देहं समन्ततः सुखं विमृद्नीयात्।

शब्दार्थ– **शरीरायासजननं** = शरीर में थकावट पैदा करनेवाला। **कर्म व्यायाम् सञ्ज्ञितम्** = कर्म को व्यायाम नाम दिया गया। **तत्** = उसके। **कृत्वा** = करके। **तु** = अवश्य ही। **देहं** = शरीर को। **समन्ततः** = सभी ओर से। **सुखं** = सुखपूर्वक। **विमृद्नीयात्** = मसलना और दबाना चाहिए।

अर्थ– शरीर में थकावट पैदा करनेवाले कर्म को व्यायाम कहा गया है। इसे करने के पश्चात् शरीर को आराम व चारों ओर से मालिश कर लेना चाहिए।

श्लोक ८. अन्वय– (व्यायामात्) शरीरोपचयः कान्तिः गात्राणाम् सुविभक्तता दीप्ताग्नित्वम् अनालस्यं स्थिरत्वं लाघवम् मृजा।

शब्दार्थ– **व्यायामात्** = व्यायाम करने से। **शरीरोपचयः** = शरीर का विकास। **कान्तिः** = सुन्दरता। **गात्राणां** = अंगों का सही प्रकार से विभाजन। **दीप्ताग्नित्वम्** = भूख की वृद्धि। **अनालस्य** = आलस्यहीनता। **लाघवं** = निपुणता। **मृजा** = स्वच्छता।

अर्थ– व्यायाम करने से शरीर का विकास, सुन्दरता, अंगों का सही प्रकार से विभाजन, आलस्यहीनता, पाचन-क्रिया में वृद्धि, निपुणता, स्वच्छता आदि गुण उत्पन्न होते हैं।

श्लोक ९. अन्वय– व्यायामात् श्रमक्लमपिपासोष्णशीतादीनां सहिष्णुता परमम् आरोग्यं च अपि उपजायते।

शब्दार्थ– **श्रमक्लम** = थकान, इन्द्रियों की थकान। **पिपासा** = प्यास। **उष्ण** = गर्मी। **शीत** = ठण्ड। **सहिष्णुता** = सहन करना। **परमं आरोग्यं** = परम आरोग्यता। **जायते** = उत्पन्न होती है।

अर्थ– व्यायाम करने से इन्द्रियों की थकान, प्यास, गर्मी, सर्दी आदि सहन करने की क्षमता और आरोग्यता उत्पन्न होती है।

श्लोक १०.अन्वय– तेन् सदृशम् स्थौल्यापकर्षणम् च किञ्चित् न अस्ति। अरय: च व्यायामिनम् मर्त्यम् भयात् न अर्दयन्ति।

शब्दार्थ– **तेन** = उसके। **सदृशम्** = समान। **स्थौल्य** = मोटापा। **अकर्षणं** = खींचनेवाला। **किंचित्** = कोई। **अरयः** = शत्रु। **व्यायामिनम्** = व्यायाम करनेवाले से। **भयात्** = डर से। **अर्दयन्ति** = पीड़ित करना।

अर्थ– शरीर के मोटापे को कम करनेवाला व्यायाम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। व्यायाम करनेवाले को शत्रु भी पीड़ित नहीं करते हैं।

श्लोक ११. अन्वय–जरा च सहसा आक्रम्य एनं न समधिरोहति। व्यायाम् अभिरतस्य हि मासं च स्थिरी भवति।

शब्दार्थ– **जरा** = बुढ़ापा। **च** = और। **सहसा** = एकाएक, अचानक। **आक्रम्य** = आक्रमण। **न** = नहीं। **समधिरोहति** = करता है। **अभिरतस्य** = लगे हुए। **मासं** = मांस। **स्थिरीभवति** = मजबूत हो जाता है।

अर्थ– व्यायाम में लगे रहने से बुढ़ापा एकाएक आक्रमण नहीं करती। मांस स्थिर और मजबूत हो जाता है।

श्लोक १२. अन्वय–व्यायामक्षुण्णगात्रस्य पद्भ्याम् उद्वर्तितस्य च व्याधय: सिंहं क्षुद्रमृगा इव न उपसर्पन्ति।

शब्दार्थ– **व्यायामक्षुण्णगात्रस्य** = व्यायाम से शरीर के प्रत्येक अंग को स्थिर किया गया हो। **पद्भ्यां** = पैरों के। **उद्वर्तितस्य** = उबटन करनेवाले के। **व्याधयः** = रोग। **सिंहं** = शेर। **क्षुद्रमृगा** = वन्य जीव। **इव** = तरह। **न** = नहीं। **उपसर्पन्ति** = पास नहीं आते हैं।

अर्थ– जिसका शरीर व्यायाम करने से स्थिर हो गया हो, पैरों से शरीर का मर्दन किया गया हो उसके पास रोग उसी प्रकार से नहीं आते जिस प्रकार से शेर के पास वन्य जीव मृगादि नहीं आते हैं।

श्लोक १३. अन्वय–वयोरूपगुणै: हीनम् अपि व्यायाम: सुदर्शनम् कुर्यात्। स्निग्धभोजिनाम् बलिनाम् स: हि सदा पथ्य:, (किन्तु) शीते वसन्ते च तेषाम् पथ्यतम:।

शब्दार्थ– **वयोरूपगुणैः** = अवस्था रूप तथा गुणों से। **हीनम्** = रहित। **अपि** = भी। **सुदर्शनम्** = सुन्दर। **स्निग्ध** = चिकना। **भोजिनाम्** = भोजन करनेवाले को। **बलिनाम्** = शक्तिशाली। **पथ्यः** = लाभकारी। **शीते** = ठण्ड में।

अर्थ– अवस्था अर्थात् यौवन के गुणों के न होने पर भी व्यायाम व्यक्ति को सुन्दर बना देता है। बलवान और चिकना भोजन करनेवालों के लिए व्यायाम बहुत लाभकारी है। ठण्ड और बसन्त ऋतु में व्यायाम बहुत लाभकारी होता है।

श्लोक १४. अन्वय–स्नानं पवित्रं वृष्यम् आयुष्यम् श्रम स्वेदमलापहम् शरीरबलसन्धानम् परम् ओजस्करम् (भवति)।

शब्दार्थ– **स्नानं** = नहाना। **पवित्रं** = पवित्र। **वृष्यम्** = वीर्य। **आयुष्यम्** = उम्र को। **श्रम** = थकान। **स्वेद** = पसीना। **मल** = गन्दगी। **अपहम्** = दूर करना। **शरीरबल** = शरीर के बल को। **संधानं** = बढ़ानेवाला। **परम्** = बहुत। **ओजस्करम्** = ओज प्रदान करनेवाला।

अर्थ– प्रतिदिन स्नान शरीर को पवित्र करता है। वीर्य आयु की वृद्धि करता है। शरीर की थकावट, पसीना, धूल आदि को दूर करता है, बल को बढ़ानेवाला है और शौर्य प्रदान करता है।

श्लोक १५. अन्वय–पादयो: मलमार्गाणाम् च अभीक्ष्णश: शौचाधानम् मेध्यम् पवित्रम् आयुष्यं अलक्ष्मीकलिनाशनम् (भवति)।

शब्दार्थ– **पादयोः** = पैरों की। **मलमार्गाणां** = मल बाहर निकलने के रास्ते। **च** = और। **अभीक्ष्णशः** = बार-बार। **कलिनाशनं** = कलियुग की निर्धनता को नष्ट करने वाला।

अर्थ– स्नान करने से, पैरों तथा मलमार्गों की पवित्रता का बार-बार ध्यान रखने से स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है, स्वच्छता आती है, आयु बढ़ती है, दरिद्रता और मलिनता का नाश होता है।

श्लोक १६. अन्वय–नित्यं स्नेहार्द्रशिरस: न शिर: शूलम् न जायते, न खालित्यम् न पालित्यम् न च केशा: प्रपतन्ति।

शब्दार्थ– **नित्यं** = प्रतिदिन। **स्नेह** = तेल से। **आर्द्रशिरसः** = गीले सिर बालों को। **शूलं** = दर्द। **शिरः** = शिर में। **खालित्यं** = गंजापन, **पालित्यं** = सफेद। **केशाः** = बाल। **प्रपतन्ति** = गिरते हैं।

अर्थ– सिर में प्रतिदिन तेल डालने से सिर में दर्द नहीं होता, न गंजापन, न सफेदी आती है और न ही बाल झड़ते हैं।

श्लोक १७ अन्वय– (स्नेहार्द्रशिरसः) शिरः कपालानाम् बलं विशेषेण अभिवर्द्धते, केशा कृष्णाः दीर्घाः च दृढ़मूला च भवन्ति।

शब्दार्थ– **विशेषेण** = विशेष रूप से। **शिरः** = सिर की। **कपालानां** = हड्डियों का। **बलम्** = बल। **अभिवर्द्धते** = बढ़ जाता है। **केशा** = बाल। **कृष्णा** = काले। **दीर्घा** = लम्बे। **दृढ़मूला** = मजबूत जड़वाले। **भवन्ति** = होते हैं।

अर्थ– सिर में तेल लगाने से सिर की हड्डियाँ शक्तिशाली हो जाती हैं, बाल मजबूत जड़वाले लम्बे तथा काले हो जाते हैं।

श्लोक १८. अन्वय–मूर्ध्नि तैलनिषेवणात् इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति, आननं च सुत्वग् भवति, निद्रालाभः सुखं च स्यात्।

शब्दार्थ– **मूर्ध्नि** = सिर पर। **तैल** = तेल। **निषेवणात्** = लगाने से। **इन्द्रियाणि** = इन्द्रियाँ। **प्रसीदन्ति** = प्रसन्न हो जाती हैं। **आननं** = मुख। **सुत्वग्** = अच्छी त्वचावाला।

अर्थ– सिर पर तेल लगाने से इन्द्रियाँ प्रसन्न हो जाती हैं, मुख सुन्दर त्वचावाला हो जाता है तथा सुखपूर्वक नींद आती है।

श्लोक १९. अन्वय–न रागात्, न अपि अविज्ञानात्, आहारम् उपयोजयेत् परीक्ष्यहितम् अश्नीयात् देहो हि आहारसम्भवः।

शब्दार्थ– **न** = नहीं। **रागात्** = रुचि के कारण। **अपि अविज्ञानात्** = बिना जाने हुए। **आहारम्** = भोजन को। **उपयोजयेत्** = उपयोग करना चाहिए। **परीक्ष्य** = परीक्षण करके। **अश्नीयात्** = खाना चाहिए। **आहारसम्भवः** = भोजन से बननेवाला।

अर्थ– रुचि के बिना तथा बिना परीक्षण (जाँच) किये हुए भोजन नहीं करना चाहिए। भली प्रकार परीक्षण किया हुआ भोजन ही करना चाहिए। क्योंकि शरीर का स्वास्थ्य भोजन से ही सम्भव है।

श्लोक २०. अन्वय–विषमाशनात् बहून् कष्टान् रोगान् पश्यन् बुद्धिमान् जितेन्द्रियः हिताशी, मिताशी स्यात् कालभोजी च स्यात्।

शब्दार्थ– **विषमाशनात्** = विषम भोजन करने के कारण। **बहून्** = बहुत से। **कष्टान्** = कष्ट। **रोगान्** = रोग। **पश्यन्** = देखते हुए। **हिताशी** = हितकारी। **मिताशी** = कम खानेवाला। **कालभोजी** = समय से खानेवाला।

अर्थ– विषम भोजन करने के कारण बहुत से रोग व कष्टों को देखते हुए समय पर कम तथा अच्छा भोजन ही करना चाहिए। जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् का यही धर्म है।

श्लोक २१. अन्वय–हिताहारविहारसेवी, समीक्ष्यकारी, विषयेषु असक्तः, दाता, समः, सत्यपरः, क्षमावान्, आप्तोपसेवी च नरः अरोगः भवति।

शब्दार्थ– **हिताहारविहारसेवी** = सोच-समझ कर कार्य करनेवाला। **समीक्ष्यकारी** = विचार कर कार्य करनेवाला। **असक्तः** = रागरहित। **दाता** = देनेवाला। **समः** = सभी को समान भाव से देखनेवाला। **सत्यपरः** = सत्य का पालन करने वाला। **आप्तोपसेवी** = विश्वसनीय व्यक्तियों का संसर्ग करनेवाला। **भवत्यरोगः** = नीरोग होता है।

अर्थ– हितकारी भोजन करनेवाला, उचित विहार करनेवाला, विषयों में अनासक्त, उदार तथा समभाव रखनेवाला, सत्य का पालन करनेवाला, दानी, क्षमाशील तथा विश्वसनीय लोगों के साथ रहनेवाला मनुष्य ही सदैव नीरोग रहता है।

●●●